वर्ष : 4 अंक : 3 जुलाई-सितम्बर 2014 मूल्य : 25 रुपये

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

पारस परस

सृजन-स्मरण

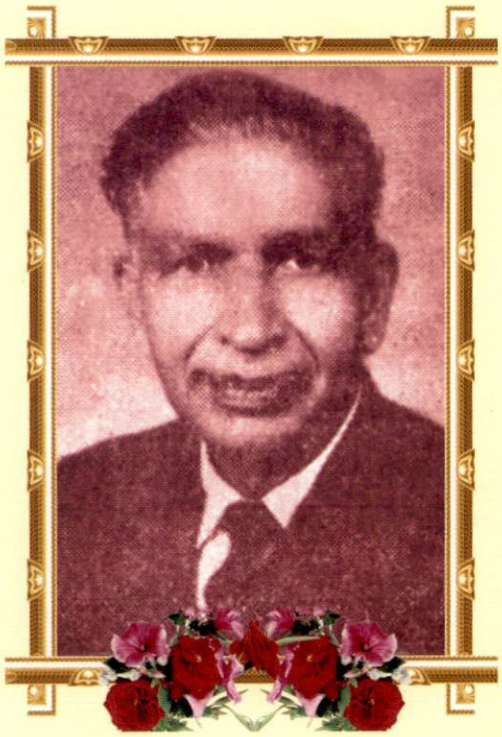

डॉ॰ रामकुमार वर्मा

(जन्म : 15 सितम्बर, 1904 ; निधन : 5 अक्टूबर, 1990)

जननी जन्मभूमि कल्याणी।
तेरी महिमा से मंडित है
कंठ–कंठ की वाणी

हिम–शिखरों की शोभा निर्मल;
यमुना–गंगा का उज्ज्वल जल;
इनकी रक्षा में प्रस्तुत है

प्रण कर प्राणी–प्राणी।
जननी जन्मभूमि कल्याणी

– डॉ॰ रामकुमार वर्मा

वर्ष : 4, समग्रांक : 14, जुलाई–सितम्बर, 2014 रजि. नं. यूपी एचआईएन/2011/39939

पारस-परस

हिन्दी काव्य की समस्त विधाओं
की संग्रहणीय त्रैमासिक पत्रिका

अनुक्रमणिका

संपादकीय		2
पाठकों की पाती		3
श्रद्धा सुमन		
पिता जी	डा॰ अनिल कुमार पाठक	4
कालजयी		
आदमी	पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून'	5–6
प्रेम सरोवर	भारतेन्दु हरिश्चंद्र	7–8
हम दीवानों की क्या हस्ती	भगवतीचरण वर्मा	9–10
सृजन के स्वर	डॉ॰ रामकुमार वर्मा	11
प्रभु तुम मेरे मन की जानो	सुभद्रा कुमारी चौहान	12–13
पं॰ सुरेश नीरव से साक्षात्कार		14–16
साहित्यिक हलचल		17–22
समय के सारथी		
कटा ज़िन्दगी का सफर धीरे–धीरे	रामदरश मिश्र	23
...तब हमने दो चार कहे	बालस्वरूप राही	24
कमरों के जो सवाल थे...	चन्द्रसेन विराट	25
परिंदे को क्या पता	लक्ष्मीशंकर वाजपेयी	26
जो भी होना है....	हरेराम 'समीप'	27
तेरे चेहरे के अंदर....	ओमप्रकाश 'यती'	28
अब सर उठाना चाहिए	नरेश शांडिल्य	29
ग़ज़ब के दोहे	डॉ॰ दिनेश चन्द्र अवस्थी	30
नारी–स्वर		
बदलेगा यह निज़ाम....	डॉ॰ मधु चतुर्वेदी	31
अपने हिस्से के दुःख–सुःख	रमा वर्मा	32
स्त्री और नदी	ममता किरण	33
जय–जयकार नहीं होती	डॉ॰ तारा गुप्ता	34
कुआँ	सुलोचना वर्मा	34
दीवाली	डॉ॰ मंजु शर्मा महापात्र	35
मैं और मेरी चिड़िया	ऋतु गोयल	36
सुनो भेड़िये	संगीता शर्मा 'अधिकारी'	37
नवोदित रचनाकार		
मेरा भी है जन्म जरूरी...	रमेश गौतम	38
इक अर्ज़ हमारी भी	उदय प्रताप सिंह	39
अंत में		
बेच दी क्यों जिन्दगी	शिवकुमार बिलग्रामी	40

संरक्षक मंडल

अभिमन्यु कुमार पाठक

अरुण कुमार पाठक

बी. एल. गौड़

पंडित सुरेश नीरव

डॉ. अशोक मधुप

संपादक

शिवकुमार बिलग्रामी

संपादकीय कार्यालय

418, मीडिया टाइम्स अपार्टमेंट
अभयखण्ड–चार, इंदिरापुरम
गाजियाबाद – 201012
मो. : 09868850099

लेआउट एवं टाइपसेटिंगः
आइडियल ग्राफिक्स
मो॰ : 8802724123

स्वत्वाधिकारी, मुद्रक एवं प्रकाशक द्वारा
पारस–बेला न्यास के लिए
डा॰ एल॰ पी॰ पाण्डेय द्वारा प्रकाश पैकेजर्स,
257, गोलागंज, लखनऊ तथा आप्शन प्रिन्टोफास्ट,
पटपड़गंज इन्ड. एरिया, नई दिल्ली से मुद्रित
एवं ए–1/15 रश्मिखण्ड, शारदा नगर योजना,
लखनऊ, उत्तर प्रदेश से प्रकाशित

पारस–परस में प्रकाशित रचनाओं में व्यक्त विचार संबंधित रचनाकारों के हैं। संपादक अथवा प्रकाशक का रचनाओं में व्यक्त विचारों से सहमत होना आवश्यक नहीं है । पत्रिका से संबंधित सभी विवाद लखनऊ न्यायालय के अधीन होंगे। उपरोक्त सभी पद मानद एवं अवैतनिक हैं।

संपादकीय

आज के दौर के उस्ताद शायर सर्वेश चन्दौसवी साहेब लिखते हैं :–

मुट्ठियों में काँच के टुकड़े दबाकर देखिए
जब लहू रिसने लगे तो मुस्कुराकर देखिए

इसकी व्याख्या यूँ भी की जा सकती है कि आप अपने हाथ में कोई मुश्किल कार्य लें, और जब वह कार्य आपके लिए चुनौती बन जाये, तब भी आप धैर्य और ध्येय न त्यागें, मुस्कुराकर लक्ष्य की ओर आगे बढें, तब समझिये आपके व्यक्तित्त्व में सकारात्मक सोच आ चुकी है और आप की सफलता का मार्ग प्रशस्त हो चुका है।

मित्रो, आज के इस दौर में, पूरी तरह साहित्य लेखन, विशेषकर काव्य लेखन में डूबना, मुट्ठियों में काँच के टुकड़े दबाने जैसा ही है। अच्छा साहित्य लेखन बहुत अधिक एकाग्रता की माँग करता है, जिसके कारण साहित्यसेवी कवि घर–परिवार में रहते हुए भी घर परिवार से दूर हो जाता है। इसके अतिरिक्त, हमारे साहित्य जगत में प्रत्येक रचना को 'वाद' के खाँचे में डालकर देखने की प्रवृत्ति के कारण एक निर्विवाद रचनाकार भी विवादों के घेरे में आ जाता है। किसी विशेष 'वाद' से जोड़कर जब साहित्यकार की आलोचना होती है, तब वो आलोचना उसके लिए असहनीय होती है और किसी भी तरह लहू रिसने से कम नहीं होती। कोई भी रचनाकार जब किसी रचना को जन्म देता है तो 'स्वान्तःसुखाय' और 'आत्मतोष' ही उसका अंतिम लक्ष्य होता है, लेकिन तात्कालिक परिस्थितियाँ या परिस्थिति विशेष..... कभी–कभी रचनाकार के लिए जिस तीव्रता और सघनता के साथ उत्प्रेरक का कार्य करती है... और उसके परिणाम स्वरूप जो प्रतिक्रियात्मक काव्य सृजन हो जाता है.... वह काव्य सृजन भी किसी आदर्श साहित्यकार को 'वाद' की परिधि में नहीं लाता। व्यवस्था को, समाज को और अन्य लोगों को सुधारने के दृष्टि से एक सुविचारित सोच के साथ आगे बढना 'वाद' है और अपने को सुधारने की सोच रखना 'अपवाद' है। साहित्यकार अपने आप में एक 'अपवाद' होता है। श्रेष्ठतर व्यक्ति सदैव 'अपवाद' रहे हैं। साहित्यकार अपवाद होता है और उसका कोई निश्चित मार्ग या लक्ष्य नहीं होता। प्रेम गीत लिखने वाला कवि शौर्यगान भी कर सकता है। छन्दमुक्त कविता लिखने वाला कवि छन्दबद्ध रचनाएं भी लिख सकता है... साहित्यकारों के लिए पूर्व निर्धारित लक्ष्मण रेखाएं नहीं होती हैं... वो अपनी लक्ष्मण रेखा स्वयं बनाते हैं... और स्वयं तोड़ते भी हैं.... स्वान्तः सुखाय के लिए.... आत्मतोष के लिए....

हिन्दी काव्य में विगत पचास–साठ वर्षों से निरंतर कुछ न कुछ नया होता चला आ रहा है... गीत... प्रगीत... नवगीत... छन्दमुक्त... विचार प्रधान गद्य काव्य जैसी कई विधाएं प्रचलन में आयीं... गयीं.... और अब भी यह क्रम निरंतर जारी है। आजकल हिन्दी काव्य में एक नया 'फ्यूजन' देखने को मिल रहा है। उर्दू की ग़ज़ल विधा को थोड़ी शिथिलता और हिन्दी शब्दावलि के साथ काव्यरचना का प्रचलन ज़ोरों पर है। जैसा कि हम जानते हैं ग़ज़ल उर्दू साहित्य की एक बेहद खूबसूरत और दिल में उतरने वाली विधा है और उर्दू शायर इसके बहर, वज़न में किसी तरह की ढील के सख़्त ख़िलाफ हैं। लेकिन हिन्दी साहित्यकार कुछ ढील के साथ इसे प्रयोग कर रहे हैं और इसे 'हज़ल' के रूप में प्रचारित कर रहे हैं। मौजूदा वक़्त का हिन्दी का प्रत्येक बड़ा कवि इस 'हज़ल' विधा को अपना रहा है और अपनी रचना धर्मिता से हिन्दी काव्य जगत को समृद्ध कर रहा है।

अपने पाठकों को इसी 'हज़ल' विधा से रू–ब रू कराने के लिए हमने पारस–परस के जुलाई–सितम्बर, 2014 के अंक में वर्तमान हिन्दी साहित्य के शीर्षस्थ रचनाकारों की रचनाओं को सम्मिलित किया है। आशा है हमारे पाठक इन्हें पढ़ेंगे, सराहेंगे और इस नई 'हज़ल' विधा का आनन्द लेंगे।

जिन रचनाकारों की रचनाएं पारस–परस के इस अंक में प्रकाशित हुई हैं मैं उनके प्रति आभार व्यक्त करता हूँ।

शिवकुमार बिलग्रामी
संपादक

माननीय संपादक महोदय,

सर, मुझे डॉ. अशोक मैत्रेय के माध्यम से आपकी पारस–परस पत्रिका का अप्रैल–जून, 2014 का अंक पढने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। मैं विगत एक वर्ष से निरंतर यह पत्रिका पढती आ रही हूँ। मुझे इस बात की खुशी है कि आपने इस अंक में सर्वेश चंदौसवी, लीलाधर मंडलोई, विश्वनाथ प्रसाद तिवारी, उदय प्रताप सिंह, पंडित सुरेश नीरव, बी. एल. गौड़, उमेश चौहान और ब्रजराज सिंह तोमर जैसे आज के वक्त के शीर्षस्थ रचनाकारों को पत्रिका में जगह दी है। इसके अतिरिक्त पत्रिका के अंतिम पृष्ठ पर आपकी जो ग़ज़ल छपी है। गुलों में रंग जो न थे, वो रंग भी दिखा गई / हयात कैसे–कैसे गुल हयात में खिला गई– अपने आप में बेमिसाल रचना है। इसकी जितनी तारीफ की जाये, कम है। कई सालों बाद इस तरह की कोई ग़ज़ल पढ़ने को मिली है।

कमलेश त्रिवेदी
हापुड़, गाजियाबाद

संपादक महोदय

पारस–परस का अप्रैल–जून का अंक पढ़ा । मुझे इस अंक को पढ़कर बहुत अच्छा लगा। इस अंक में आपने कई बदलाव किये हैं– जैसे दिग्गज कवियों से साक्षात्कार और व्यंग्य लेख आदि का प्रकाशन। इससे पत्रिका की पठन सामग्री में विविधता आई है और जो हमारे मौजूदा वक़्त के बड़े कवि हैं उनके बारे में विस्तार से जानने का मौक़ा मिला है। आपने जो साक्षात्कार प्रकाशित किया है वह अत्यधिक सुरुचिपूर्ण है क्योंकि इसमे प्रश्नों के उत्तर बड़ी सादगी से और दिल से दिये गये हैं। इसके साथ जो व्यंग्य लेख छापा है वो भी काफी अच्छा है। एक बात मैं विशेषतौर से कहना चाहूँगा कि आप जो कालजयी स्तम्भ में दिवगंत कवियों के बारे में संक्षिप्त जानकारी देते है; वो अनूठी है। दिवगंत कवियों की उपलब्धियाँ और मान–सम्मान का जो आप उल्लेख करते हैं, वो नये रचनाकारों के लिए काफी ज्ञानवर्धक है।

नरेन्द्र सिंह
हरदोई (उत्तर प्रदेश)

रचनाकार अपनी रचनाएं और प्रतिक्रियाएं कृपया निम्नलिखित पते पर भेजें–

संपादक : पारस–परस
418, मीडिया टाइम्स अपार्टमेंट
अभय खण्ड–चार, इंदिरापुरम
गाजियाबाद (उत्तर प्रदेश)

e-mail
paarasparas.lucknow@gmail.com
shivkumarbilgrami99@gmail.com

पिता जी

-डा॰ अनिल कुमार पाठक

छोड़ गये क्यूँ साथ हमारा,
साथ भला क्यूँ छोड़ गये ?
हम सब हुए अनाथ पिता जी,
साथ भला क्यूँ छोड़ गये ?
भोलापन जो सबको भाये,
सबके लिये खुशी ले आये ।
प्रमुदित पुष्पों सा वो मुखड़ा,
सोच-सोच कर हमे रुलाये ।
आखिर क्या अपराध हमारा,
जो हमसे मुख मोड़ गये ।
साथ भला क्यूँ छोड़ गये ।।
कल की ही तो है बात,
वादा किया हमारे साथ ।
सुख-दुख बाँटेंगे हम सबके,
पर आया क्यूँ दु:खद प्रभात ।
विस्मृत करके अपना वादा,
क्यूँ सब नाते तोड़ गये।
साथ भला क्यूँ छोड़ गये।।
सूना यह जीवन कर डाला,
खोया जाने कहाँ उजाला।
ज्योति किरण जो दिव्य सूर्य सी,
उस पर चढ़ा आवरण काला।
भरी हुई अमृत की गागर,
हमने खुद ही तोड़ दिये।
साथ भला क्यूँ छोड़ गये।।
अब तो सुन लो यह फरियाद,
मेरा क्रंदन करूण नाद।
वह अपनापन नेह, दुलार,
जैसे हो प्रभु का प्रसाद।
हरा-भरा वह तेरा बिरवा,
हमने खुद जड़ कोड़ दिये।
साथ भला क्यूँ छोड़ गये।।

❖❖❖

आदमी

-पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून'

एक छोटी देह लेकर, बुद्धि कितनी है विशाल।
आदमी है चाहता कि बाँध लूँ आकाश को भी। .
आदमी है चाहता कि छीन लूँ मैं चाँद को भी।
आदमी है चाहता वायु से भी खेलना,
चाहता है सूर्य को भी बर्फ सा ठण्डा बनाना,
आदमी है चाहता तारकों में रंग भरना।
आदमी है चाहता बादलों से काम लेना भिश्तियों का।
आदमी है सोचता कि वह वहुत बलवान है।
आदमी की बुद्धि उसको है सदा आगे बढ़ाती,
मानता हूँ वह बहुत आगे बढ़ चुका है।
पर छूटती सी जा रही है कुछ चीज़ उसके सामने से।
इसलिए आदमी अब भी बहुत कमज़ोर हैं
और इसी से आज भी है वह अधूरा
ज्ञान उसका है न अब भी आज पूरा।
आदमी है चाहता कि छोड़कर उर-चेतना, भावना
बुद्धि के बल राज्य करना व्योम के विस्तार पर
खेद उसकी बुद्धि को है, व्यर्थ उसका ज्ञान है,
जो कि है आगे बढ़ाती,
व्योम के पथ पर चढ़ाती
छोड़ कर इस मृत्तिका-संसार को।
पर सोच ले तू आदमी है, बुद्धि तेरी है बढ़ी।
क्या हदय की वेदना पर वह न जाती है चढ़ी
अरु कुचलती जा रही है मानवी-मृदु-भाव को भी
ज्ञान केवल शुष्क-तम का भार है।
डाल देगा जो कंटीली झाड़ियों में,
कह कर यहाँ पर फूल है।
और फिर संवेदना तो दूर है ही
मूर्ख कह वह उपहास तेरा फिर करेगा।
व्योम के तारे हँसेंगे, देख कर असफलता तुम्हारी।
चाँद रोयेगा तुम्हारे देख कर उर की विकलता ।
छोड़कर तू आदमी के प्रेम को भी
भूल कर तू भावना से हेम को भी
शुष्क जीवन के सहारे कैसे करोगे पार दुनिया?
इसलिए आदमी अब भी बहुत कमजोर है।
कर न पायेगा विजय, आदमी इस संसार पर
व्योम तो अति दूर है।
वह गिरे बादलों की चोट से और बूँद की बौछार से

रश्मियों में वह उलझ कर भूमि पर गिर जायगा।
याद रखना आदमी अब भी बहुत कमजोर है।
सूर्य की किरणें उसे चुभ जाएंगी।
ज्वार सागर का उसे ऐसा डुबोयेगा लहर में
चल न पायेगा कभी वह जिन्दगी की राह पर
चल न सकता आदमी है जिन्दगी की चाल तब तक
जब तक भुलाता सा रहेगा आदमी को आदमी
ज्ञान में, विज्ञान में जब तक न होगा प्रेम उर का
मस्तिष्क के बल वह गिरेगा कंटकों के जाल में।
मोह औ' उन्माद के बल ज्ञान के विस्तार केवल
आदमी है चाहता कि वह अकेला ही बढ़े
छोड़ कर और लोगों के गिरे संसार को,
चाहता है वह अकेला पूर्णिमा का चाँद पाना,
शेष लोगों के करों से तारकों को छीन कर
पर सोचता है, क्या कभी वह इच्छाएं न सबकी एक होंगी?
तो न क्या भावनाएं लड़ पड़ेगी मार्ग में?
पूर्णता के स्वप्न बिखरेंगे धरा पर
और होगी जिन्दगी मझदार में।
और जीवन में विकलता ही बढ़ेगी संघर्ष और उत्पात से।
सोच ले तू आदमी अब भी बहुत कमजोर है।
हो रहे हो तुम विवश ज्ञान से मैं मानता हूँ
और मैं भी ज्ञान की श्रेष्ठता को जानता हूँ।
ज्ञान ऊँचा है हिमालय, श्रेष्ठ है सब वस्तुओं से
अरु हृदय है सिन्धु में है रस धार की मधु-भावना,
क्योंकि हिम गिरी से निकलकर मिल रहीं सरितायें इसी में,
देखना है गुण किसी का, न कि उसकी रूप रेखा या उच्चता,
और गुण को मानता हूं, आदमी से आदमी का प्यार होना।
आदमी ही सृष्टि का सुन्दर सुघर वरदान है।
शान उसकी मानते हैं जंगलों के शेर तक।
पर आदमी तो स्वयं गिरता जा रहा है
औ' गिराता जा रहा है आदमी के मोल को भी,
जब तक हृदय की प्रेरणा से चेतना होगी नहीं,
चल न पायेगा कभी वह जिन्दगी की राह पर,
जिन्दगी तो चाहती है मोम सी इक भावना,
जिन्दगी है चाहती कि पा सकूं मैं प्रेम उर का
क्योंकि हृदय का द्वार ही सबके लिए उन्मुक्त है।

❖❖❖

भारतेन्दु हरिश्चंद्र

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का जन्म 9 सितम्बर, 1850 को काशी में हुआ था। इनका मूल नाम हरिश्चन्द्र था, भारतेन्दु इनकी उपाधि थी। भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को आधुनिक हिन्दी साहित्य का पितामह कहा जाता है। उन्होंने रीतिकाल की विकृत सामंति की पोषक वृत्तियों को त्याग कर हिन्दी साहित्य में नवीनता के बीज बोये और गरीबी, पराधीनता, शोषण आदि को साहित्य की विषय वस्तु बनाया। इनके साहित्यिक योगदान के कारण ही 1855 से 1900 तक के काल को भारतेन्दु युग के नाम से जाना जाता हैं। पैंतीस वर्ष की अल्पायु में ही 6 जनवरी, 1885 को इनका निधन हो गया।

प्रेम सरोवर

प्रेम प्रेम सब ही कहत प्रेम न जान्यौ कोय
जो पै जानहि प्रेम तो मरै जत क्यों रोय

प्रेम-सरोवर नीर को यह मन जानेहु कोय
यह मदिरा को कण्ड है न्हातहि बौरो होय

प्रेम-सरोवर-पंथ मैं चलिहैं कौन प्रवीन
कमल-तंतु की नाल सों जाको मारगछीन

प्रेम-सरोवर की लखी उलटी गति जग मांहि
जे डूबे तेई भले तिरे तरे ते नांहि

प्रेम-सरोवर की यहै तीरथ बिधि परमान
लोक वेद को प्रथम ही देहु तिलांजलि-दान

लोक नाम है पंक को बृच्छ वेद को नाम
ताहि देखि मत भूलियो प्रेमी सुजन सुजान

गहवर बन कुल वेद को जहं छायो चहुं ओर
तहं पहुंचै केहि भांति कोउ जाको मारग घोर

कबहुं होत नहिं भ्रम निसा इक रस सदा प्रकास
चक्रवाक बिछुरत न जहं रमत एक रस रास

नारद शिव शुक सनक से रहत जहां बुह मीन
सदा अमृत पीके मग्न रहत होत नहिं दीन

इन आदिक जग के जिते प्रेमी परम प्रसंस
तेई या सर के सदा सोभित सुंदर हंस

अरे बृथा क्यों पचि मरौ ज्ञान-गरूर बढ़ाय
बिना प्रेम फीको सबै लाखन करहु उपाय
प्रेम सकल श्रुति-सार है प्रेम सकल स्मृति-मूल
प्रेम पुरान-प्रमाण है कोउ न प्रेम के तूल

बृथा नेम, तीरथ, धरम, दान, तपस्या आदि
कोऊ काम न आवई करत जात सब बादि

बिना प्रेम जिय ऊपजे आनंद अनुभव नांहि
ता बिनु सब फीको लै समुझि लखहु जिय मांहि

ज्ञान करम सों औरहू उपजत जिय अभिमान
दृढ़ निहचै उपजै नहीं बिना प्रेम पहिचान

जान्यो वेद पुरान भे सकल गुनन की खानि
जु पै प्रेम जान्यो नहीं कहा कियो सब जानि

काम क्रोध भय लोभ मद सबन करत लय जौन
महा मोहहू सों परे प्रेम भाखियत तौन

बिनु गुन जोबन रुप धन बिनु स्वारथ हित जानि
शुद्ध कामना तें रहित प्रेम सकल रस-खानि

अति सूछम कोमल अतिहि अति पतरो अति दूर
प्रेम कठिन सब तें सदा नित इक रस भरपूर

जग में सब कथनीय है सब कछु जान्यौ जात
पै श्री हरि अरु प्रेम यह उभय अकथ अलखात

बंध्यौ सकल जग प्रेम में भयो सकल करि प्रेम
चलत सकल लहि प्रेम को बिना प्रेम नहिं छेम

पै पर प्रेम न जानहीं जग के ओछे नीच।
प्रेम जानि कछु जानिबो बचत न या जग बीच

दंपत्ति-सुख अरु विषय-रस पूजा निष्ठा ध्यान
इनसों परे बखानि, शुद्ध प्रेम रस-खान

जदपि मित्र सुत बंधु तिय इनमैं सहज सनेह
पै इन मैं पर प्रेम नहिं गरे परे को एह

❖❖❖

भगवतीचरण वर्मा

भगवती चरण वर्मा का जन्म 30 अगस्त 1903 को उत्तर प्रदेश में उन्नाव जिला के शफीपुर गाँव में हुआ था। इन्होंने कविता लेखन से साहित्य जगत में आरंभ किया था किंतु बाद में गद्य लेखन की ओर उन्मुख हो गये। इनके प्रसिद्ध उपन्यास 'चित्र लेखा' पर दो बार फिल्मों का निर्माण हुआ। इनके उपन्यास–'भूले बिसरे चित्र' के लिए इन्हें साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया गया। इसके अतिरिक्त इन्हें इनके साहित्यिक योगदान के लिए भारत सरकार द्वारा पद्म भूषण और राज्यसभा की मानद सदस्यता से भी सम्मानित किया गया। इनका निधन 5 अक्टूबर 1981 को हुआ।

हम दीवानों की क्या हस्ती

(1)

हम दीवानों की क्या हस्ती,
हैं आज यहाँ, कल वहाँ चले।
मस्ती का आलम साथ चला,
हम धूल उड़ाते जहाँ चले।

आ, बन कर उल्लास अभी
आँसू बन कर बह चले अभी,

सब कहते ही रह गये, अरे
तुम कैसे आ, कहाँ चले ?

(2)

किस ओर चले ? यह मत पूछो
चलना है, बस इसलिए चले,
जग से उसका कुछ लिए चले,
जग को अपना कुछ दिए चले।

दो बात कही, दो बात सुनी,
कुछ हँसे और फिर कुछ रोए।

छक कर सुख दुख के घूँटों को
हम एक भाव से पिरो, चले।

(3)

हम भिखमगों की दुनिया में
स्वच्छन्द लुटा कर प्यार चले,
हम एक निशानी सी उर पर
ले असफलता का भार चले।

हम मान रहित, अपमान रहित
जी भर कर खुलकर खेल चुके
हम हँसते हँसते आज यहाँ
प्राणों की बाजी हार चले।

हम भला बुरा सब भूल चुके,
नत मस्तक हो मुख मोड़ चले,
अभिशाप उठा कर होठों पर
वरदान दृगों से छोड़ चले,

अब अपना और पराया क्या ?
आबाद रहें रुकने वाले!
हम स्वयं बँधे थे, और स्वयं
हम अपने बन्धन तोड़ चले।

(2)

समर्थ शीश दान दो

सगर्व जब मुनष्य कह उठा कि आज मान दो
मुझे महान् मान दो।
प्रकृति पुकार तब उठी अरे कि शीश दान दो
समर्थ शीश दान दो।

सहम रहा गगन प्रशान्त तप्त आह से भरा,
सहम रही अशान्त भ्रान्त रक्त रंजिता धरा,
उबल रहा समुद्र और
मेरु टूट गिर रहा,
मनुष्य भाल पर लिये
विनाश की परम्परा।
अखण्ड सृष्टि यह समस्त
खण्ड खण्ड हो रही,
मनुष्य की मनुष्यता
स्वयं विनष्ट रो रही,
मनुष्य शक्ति हीन है, मनुष्य नाशवान है
सशक्त जो अजर-अमर-असीम एक ज्ञान है,
अलख जगा रहा सुकवि-मनुष्य आत्म ज्ञान लो,
समर्थ! शीश दान दो।

मिली तुम्हें न यदि दया, मिली तुम्हें न भावना,
विनाश है मनुष्य तब समस्त ज्ञान साधना।
विनाश तर्क बुद्धि सब,
विनाश अध्ययन, मनन,
विनाश सृष्टि पर विजय,
विनाश तत्व का मथन।
अबाधबल, अधीर गति
अलक्ष निज समर्थता
लिये मनुष्य कर रहा
विनाश का महा सृजन।
प्रमाद से भरा हुआ अहम ससीम संकुचित,
मनुष्य तुम स्वयं विवश मनुष्य तुम स्वयं विजित।
असत्य भोग वासना,
असत्य सिद्धि कामना,
मनुष्य सत्य त्याग है,
मनुष्य सत्य भावना।
रुको, झुको, करो मनुष्य प्रेम की उपासना।

रुको, मकान जल रहे, रुको नगर उजड़ रहे।
रुको, प्रलय उमड़ रही, विनाश घन घुमड़ रहे।
कराह-आह का धुआँ-
हरेक साँस घुट रही,
समस्त सभ्यता सुरुचि
दलित विनष्ट लुट रही,
विषाक्त हास्य हँस रही
सशक्त हिंस्र वृत्तियाँ,
मनुष्य सृष्टि की धुरी
अशक्त आज छुट रही!
रुको प्रमत्त ! आँख में असीम अन्धकार है,
रुको प्रमत्त! पैर में विनाश का प्रहार है,
मदान्ध पशु प्रवृत्ति और
चेतना विनष्ट है,
मनुष्य पन्थ हीन है
मनुष्य लक्ष्य भ्रष्ट है!
झुको कि भूमि चूम लो, रुको कि तुम उखड़ रहे!
रुको, मकान जल रहे, रुको, नगर उजड़ रहे।

डॉ॰ रामकुमार वर्मा

डा॰ रामकुमार वर्मा का जन्म 15 सितम्बर, 1904 को मध्यप्रदेश के सागर जिला में हुआ था। डा॰ रामकुमार वर्मा मूलतः एकांकीकार और समालोचक थे। लेकिन इन्होंने काव्य लेखन में भी सराहनीय योगदान दिया है। इनके काव्य में रहस्यवाद और छायावाद की झलक है। साहित्यिक योगदान के लिए भारत सरकार द्वारा इन्हें 'पद्म भूषण' से सम्मानित किया गया । इनका निधन 5 अक्टूबर, 1990 को हुआ।

सृजन के स्वर

यह कँटीली भूमि, कैसे यहाँ निकला फूल।

किस लता की साधना का स्वप्न घुल कर
कंटकों के इस अँधेरे में खिला है?
कष्ट से हतप्रभ बने सूने नयन को
वेदना का अश्रु जैसे अब मिला है।

किस मलय की लहर का लालित्य था वह
किस दिशा से खिंच स्वयं यह बीज खींचा?
और कटुता से भरे नीरस विजन में
मधुरता का बिंदु पहली बार सींचा।

सत्य के समकक्ष ही है विभ्रमित यह भूल,
यह कँटीली भूमि, कैसे यहाँ निकला फूल।

लहर हिचकी ले उठी जब चोट खाई
यह न समझी, कौन सी वह कंकड़ी थी,
पत्थरों के बीच सिहरी नाचती-सी
यह न सोचा, शिला छोटी या बड़ी थी।

नील नभ का बिंब ले प्रत्येक कण में
बुदबुदों की राशि दुलराती चली थी,
किस दिशा से कौन बल उसको मिला था
जो कि बल के साथ बल खाती चली थी?

थी उसे चिंता न, किस दिन मिल सकेगा कूल,
यह कँटीली भूमि, कैसे यहाँ निकला फूल।

और मैं हूँ, भाग्य की किस प्रेरणा से
खिल उठा हूँ संकटों के इस विपिन में,
डूब कर शशि की सुधा की धार में कल
आज निकला सूर्य से अभिसिक्त दिन में।

पत्थरों की संधि में वह ओस-कण था
जो कि जीवन का महासागर छिपाए,
एक गहराई मुझे देकर सृजन की
स्वयं सूखा, अंकुरित जीवन जगाए।

इस सृजन के पर्व में जीवित बनी है धूल,
यह कँटीली भूमि, कैसे यहाँ निकला फूल।

सुभद्रा कुमारी चौहान

सुभद्राकुमारी चौहान का जन्म 16 अगस्त, 1904 को इलाहाबाद के निकट निहालपुर गाँव में हुआ था। ये राष्ट्रीय चेतना की एक सजग कवियित्री रही हैं और स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान इन्हें कई बार जेल यात्राएं करनी पड़ीं। इन्होंने कई उत्कृष्ट कविताएं लिखी हैं लेकिन इन्हें प्रसिद्धि मुख्यतः 'झाँसी की रानी' कविता से मिली है। भारतीय तटरक्षक सेना ने इनकी स्मृति में एक तटरक्षक जहाज को सुभद्रा कुमारी चौहान का नाम दिया है। इसके अतिरिक्त भारतीय डाक तार विभाग ने इनके नाम पर 25 पैसे का एक टिकट भी ज़ारी किया है।

इनका निधन 15 फरवरी, 1948 को एक कार दुर्घटना में हो गया।

प्रभु तुम मेरे मन की जानो

मैं अछूत हूँ मन्दिर में आने का मुझको अधिकार नहीं है।
किन्तु देवता यह न समझना तुम पर मेरा प्यार नहीं है।।
प्यार असीम अमिट है फिर भी पास तुम्हारे आ न सकूँगी।
यह अपनी छोटी-सी पूजा चरणों तक पहुँचा न सकूँगी।।

इसीलिए इस अंधकार में मैं छिपती-छिपती आयी हूँ।
तेरे चरणों में खो जाऊँ, इतना व्याकुल मन लायी हूँ।।
तुम देखो पहिचान सको तो तुम मेरे मन को पहिचानो।
जग न भले ही समझे, मेरे प्रभु तुम मेरे मन की जानो।

मेरा भी मन होता है मैं पूजूं तुमको फूल चढ़ाऊँ।
और चरण-रज लेने को मैं चरणों के नीचे बिछ जाऊँ।।
मुझको भी अधिकार मिले वह जो सबको अधिकार मिला है।
मुझको प्यार मिले, जो सबको देव तुम्हारा प्यार मिला है।।

तुम सबके भगवान, कहो मन्दिर में भेदभाव कैसा?
हे मेरे पाषाण पसीजो बोलो क्यों होता ऐसा?
मैं गरीबिनी किसी तरह से पूजा का सामान जुटाती।
बड़ी साथ से तुझे पूजने मन्दिर के द्वारे तक आती।।

कह देता है किन्तु पुजारी यह तेरा भगवान नहीं है।
दूर कहीं मन्दिर अछूत का और दूर भगवान कहीं है।।
मैं सुनती हूँ जल उठती है मन में यह विद्रोही ज्वाला।
यह कठोरता, ईश्वर को भी जिसने टूक-टूक कर डाला।।

यह निर्मम समाज का बन्धन और अधिक अब सह न सकूँगी
यह झूठा विश्वास प्रतिष्ठा झूठी इसमें रह न सकूँगी।।
ईश्वर भी दो है, यह मानूँ, मन मेरा तैयार नहीं है।
किन्तु देवता यह न समझना तुम पर मेरा प्यार नहीं है।।

मेरा भी मन है जिसमें अनुराग भरा है, प्यार भरा है।
जग में कहीं बरस जाने को स्नेह और सत्कार भरा है।।
वही स्नेह, सत्कार, प्यार मै आज तुम्हे देने आयी हूँ
और इतना तुमसे आश्वासन, मेरे प्रभु लेने आयी हूँ।

तुम कह दो तुमको उनकी इन बातों पर विश्वास नहीं है।
छूत-अछूत, धनी-निर्धन का भेद तुम्हारे पास नहीं है।।

निवेदन

पारस–परस पूरी तरह से एक गैर–व्यावसायिक पत्रिका है। इसका एकमात्र उद्देश्य काव्य के माध्यम से हिन्दी कवियों के पैगाम को जन–जन तक पहुंचाना है। इस पत्रिका में प्रकाशित सभी रचनाओं के साथ रचनाकारों का नाम और उनसे संबंधित उचित जानकारी दी जाती है जिससे रचनाकार को उचित श्रेय मिलता है। इतना ही नहीं, हम प्रत्येक अप्रकाशित/मौलिक रचना के प्रकाशन से पूर्व संबद्ध रचनाकार/कॉपीराइट धारक से लिखित/मौखिक अनुमति का भी भरसक प्रयास करते हैं । फिर भी यदि किसी रचनाकार, कॉपीराइट धारक को कोई आपत्ति है तो उनसे अनुरोध है कि वह हिन्दी काव्य के प्रचार–प्रसार को ध्यान में रखते हुए, इस पत्रिका के योगदानकर्त्ताओं से हुई भूलवश गलती को क्षमा कर दें। मौलिक/अप्रकाशित रचनाओं के कॉपीराइटधारक अपनी आपत्तियाँ paarasparas.lucknow@gmail.com पर मेल कर सकते हैं ताकि पत्रिका के आगामी अंकों में उनकी रचनाएं प्रकाशित करने से पूर्व लिखित अनुमति सुनिश्चित की जा सके और इस संबंध मे आवश्यक कानूनी पहलुओं को ध्यान में रखा जा सके।

इस कार्य को **पारस–बेला न्यास** द्वारा जन–जागरुकता और जनहित की दृष्टि से किया जा रहा है। **इस पत्रिका को प्राप्त करने के लिए संपादकीय कार्यालय से संपर्क कर सकते हैं।**

कविता अभिव्यक्ति का परिमार्जित रूप है - पंडित सुरेश नीरव

*पंडित सुरेश नीरव आज के दौर के उन रचनाकारों में से हैं जो अपनी गहरी समझ और पैनी दृष्टि के कारण अपनी कलम से बड़ी आसानी से गहन विषय को भी हास्य व्यंग्य का पुट देकर प्रस्तुत करने में समर्थ हैं । वह विषय को इतना सुरुचिपूर्ण बनाकर पाठकों और श्रोताओं के समक्ष पेश करते हैं कि कोई भी व्यक्ति उनकी सराहना किये बिना नहीं रह सकता। दिग्गज कवियों से साक्षात्कार की श्रृंखला में पारस–परस के संपादक **शिवकुमार बिलग्रामी** ने इस अंक के लिए उनका साक्षात्कार लिया। इस साक्षात्कार के माध्यम से हमें उनके जीवन के विभिन्न पहलुओं के बारे में कई रोचक जानकारियाँ प्राप्त हुई। यहाँ प्रस्तुत है– उनके जीवन और काव्य के प्रति उनके दृष्किोण से संबंधित जानकारी।*

प्रश्न : आप काव्य-लेखन कब से कर रहे हैं?

उत्तर : मैं 1970 में, जब विश्वविद्यालय में विज्ञान का छात्र था, तब से काव्य-लेखन कर रहा हूँ। विज्ञान के छात्र कविता लेखन के क्षेत्र में कम ही आते हैं। मुझे एक बार अंतर-महाविद्यालयी काव्य प्रतियोगिता में भाग लेने का अवसर मिला। उसमें मुझे कविता लेखन के लिए पुरस्कृत किया गया। बस, तब से मैं कवि हो गया....

प्रश्न : क्या आपके परिवार में भी कोई लेखन कार्य से जुड़ा रहा है?

उत्तर : हाँ, मैं अपने परिवार में तीसरी पीढ़ी का कवि हूँ... मुझसे पहले मेरे पिताश्री साहित्य शिरोमणि पं॰ दामोदर दास चतुर्वेदी एक रससिद्ध कवि के रूप में विख्यात थे। वह कई वर्षों तक कलकत्ता से प्रकाशित हिन्दी समाचार पत्र विशाल भारत के संपादक थे। मेरे पितामह अर्थात मेरे दादाजी हिन्दी भाषा हास्य रसावतार पंडित जगनाथ प्रसाद चतुर्वेदी हास्य के पहले कवि के रूप में जाने जाते हैं।

प्रश्न : यह सुखद आश्चर्य है कि साहित्य लेखन में भी लोग कई पीढ़ियों से अपना योगदान दे रहें हैं। क्या मैं जान सकता हूँ कि आपके पिताश्री और पितामह ने इस क्षेत्र में कोई ऐसी लाभप्रद ज़मीन तैयार की थी जिसके कारण इस क्षेत्र में आपका आकर्षण बढ़ा और आप ने इसी विरासत को आगे ले जाना उचित समझा?

उत्तर : आज से सौ साल पहले जो लोग कविता लिखते थे, वो बहुत ही संपन्न और समृद्ध लोग होते थे। वे काव्य और साहित्य के लिए अपनी संपत्ति लुटाते थे। वे काव्य से प्रतिलाभ की कोई अपेक्षा नहीं रखते थे। कविताई के लिए किसी से धन ग्रहण करना उचित नहीं मानते थे। जितने भी काव्य-साधक होते थे, वो स्वयं को सरस्वती पुत्र मानते थे। आर्थिक लाभ की बात तो सोचते ही नहीं थे... इसलिए मुझे इस क्षेत्र में अर्थलाभ को कोई लालच खींच लाया, ऐसी बात सोचना भी बेमानी है...

प्रश्न : पूर्व में बाज़ार वाद इतना हावी नहीं था। रचनाकारों की देखभाल समाज करता था या वे स्वयं आत्मनिर्भर होते थे, लेकिन अब परिस्थितियाँ बदल गई हैं...

उत्तर : विगत में साहित्य और कविता एक मिशन थी, बाद में स्वतंत्रता के दौरान भी यह मिशन ही रही, स्वातंत्र्योत्तर भी यह सामाजिक परिवर्तन का हथियार थी... कविता को आज जो मनोरंजन कर्म के रूप में देखते हैं, वो लोग लोकतांत्रिक मूल्यों में विश्वास नहीं रखते हैं... या फिर वे लोकतंत्र में सामंतवादी सोच रखने वाले लोग हैं।

प्रश्न : **लेकिन आज की अतुकांत कविता, जिसे हम छन्द मुक्त कविता कहते हैं वो भी, मनोरंजन का साधन नहीं है, उसे भी सामाजिक परिवर्तन के हथियार के रूप में ही प्रयुक्त किया जा रहा है?**

उत्तर : कविता सदैव गेय रही है। इसके वाचन की परंपरा कभी नहीं रही है । इसे सुनाया जाता रहा है... अंताक्षरी के माध्यम से या समस्यापूर्ति के माध्यम से... मुझे आज भी छन्द मुक्त, शिल्प हीन कविता को कविता कहने में संकोच हो रहा है।

प्रश्न : **लेकिन आज के पाठ्यक्रमों में जैसे कवि पढ़ाये जा रहे हैं उन्हें छन्द से कुछ लेना देना नहीं है...**

उत्तर : ....(हँसते हुए) इसे कविता का गद्यकाल कह सकते हैं। ....(फिर गंभीर होते हुए) वस्तुत: 1970 तक गीतकार ही केन्द्र में था। गेय कविता ही प्रमुखता में थी। यहाँ तक कि हास्य कविता भी गेय ही थी। काका हाथरसी भी गेय लिखते थे। जो अछान्दस कविता भी थी वो भी छन्द मुक्त नहीं थी। आजकल तो एकदम छन्द हीन....लय, ताल मुक्त कविताएं लिखी जा रहीं हैं.... यह सब देखकर बड़ा दु:ख होता है।

प्रश्न : **पंडित सुरेश नीरव एक ऐसे कवि हैं जिनकी सत्तापक्ष के लोगों से बड़ी नजदीकियाँ रही है, लेकिन फिर भी आपकी रचनाएं विद्यालयों / विश्वविद्यालयों में हिन्दी के पाठ्यक्रमों में शामिल नहीं हुईं..... इसकी क्या वजह हो सकती है?**

उत्तर : मैं सत्ताशिविर के लिए कभी उपयोज्य नहीं रहा। मैंने कभी कोई पद नहीं लिया.... क्योंकि मैं क़द को पद से बड़ा मानता हूँ। अच्छा ही हुआ मेरी कविताएं पाठ्यक्रम में नहीं लगीं। आज सुमित्रानंदन पंत, जयशंकर प्रसाद और महादेवी वर्मा की कविताएं भी पाठ्यक्रम से बाहर हैं।

प्रश्न : **आपकी प्रकाशित पुस्तकें कौन-कौन सी हैं?**

उत्तर : मुझे सब तो याद भी नहीं हैं.... लेकिन जो याद हैं उनमें 'समय सापेक्ष हूँ मैं', प्रमुख है। यह छन्दमुक्त कविताओं का संग्रह है। 'मज़ा मिलेनियम' हास्य-व्यंग्य ग़ज़लों का एक संग्रह है। 'तथागत' एक गीत संग्रह है। 'जहान है मुझमें' गंभीर प्रकृति की ग़ज़लों का संग्रह है। इसके अतिरिक्त जीवन के शाश्वत मूल्यों और सनातन प्रश्नों पर आधारित सर्वतोष प्रश्नोत्तर शतक' और 'उत्तर प्रश्नोपनिषद है। अंग्रेजी भाषा में भी एक पुस्तक 'पोयट्री आफ सुरेश नीरव' प्रकाशित हुई है।

प्रश्न : **आपने अब तक किन-किन देशों की काव्य-यात्रांए की हैं?**

उत्तर : यूके, इटली, फ्रांस, मिस्र, मारीशस, नेपाल, हालैण्ड, नार्वे, डेनमार्क, सिंगापुर, मलेशिया, थाईलैंड सहित लगभग 26 देशों की काव्य-यात्राएं की हैं।

प्रश्न : **मौजूदा वक़्त में और आने वाले कल में आप समाज में काव्य की क्या भूमिका पाते हैं?**

उत्तर : कविता अभिव्यक्ति का परिमार्जित रूप है। मनुष्य स्वभावत: कवि होता है, जो नहीं होता है वह कवि बनना चाहता है। बहरहाल, कविता की ललक कल भी थी, आज भी है और कल भी रहेगी। आज एस एम एस कविताएं आ रही हैं। लोग अपनी बोलचाल की भाषा में तुकबंदी कर रहे हैं। यानी कि उनके अस्तित्त्व में कविता नाचती है... बिलग्रामी जी आप तो स्वयं संसद से जुड़े हुए है... आपने देखा होगा किस तरह हमारे शायर कभी-कभी गंभीर चर्चा के दौरान शे'रो-शायरी करने लगते हैं... कविता हमेशा जिन्दा रहेगी। बाजार ने कविता को धकेलने की कोशिश ज़रूर की मगर कविता ने अपना एक बड़ा बाज़ार बना लिया। ....आज गीतों से पूरी फिल्म का खर्चा निकल आता है... गीत अभी भी लोगों के मन प्राणों में रचे-बसे हैं...और ये हमेशा रहेंगे।

प्रश्न : **क्या हमारे नये रचनाकारों को कविता एक कैरियर के रूप में अपनानी चाहिए?**

उत्तर : यह तो रचनाकार की सामर्थ्य पर निर्भर करता है। नई पीढ़ी में भी कुछ कवि ऐसे हैं जो पूर्णकलिक कवि हैं और बड़े सुखी हैं। यह अलग बात है वह कविताएं दे पा रहे हैं या नहीं लेकिन धनार्जन कर रहे हैं। इसलिए यह रचनाकार की सामर्थ्य पर निर्भर है।

प्रश्न : **साहित्यिक पत्रिकाएं बंद हो चुकी हैं या बंद होने की कगार पर हैं, ऐसी स्थिति में साहित्यिक कविताएं लिखने वालों के लिए अभिव्यक्ति का माध्यम कहाँ मिलेगा?**

उत्तर : साहित्यिक पत्रकारिता हमेशा 'class' के लिए रही है 'mass' के लिए नहीं। इसलिए इनकी व्याप्ति सीमित रहती है। बड़े प्रकाशन समूह, जिनकी पत्रकारिता का पैमाना प्रसार संख्या होता है, वो इसी कारण पत्रिकाएं बंद कर देते हैं। लेकिन हमारे देश में हिन्दी की ही बात की जाये तो तमाम लेखक, संगठन और व्यक्तिगत स्तर पर लेखक स्वयं पत्रिकाएं प्रकाशित कर रहे हैं और उनकी साहित्यिक जगत में प्रतिष्ठा भी है। इनसे नये रचनाकारों को पहचान भी मिली है। 'तद्भव', 'कथन', 'पाँखुरी', और 'पारस-परस' इसका उदाहरण हैं।

प्रश्न : **आपकी कोई रचना जो आपको बहुत प्रिय हो ?**

उत्तर : मेरी सभी रचनाएं मुझे प्रिय हैं... फिर भी अक्सर मै अपना एक गीत गुनगुनाता रहता हूँ :-

वेदने ओ वेदने! आ, मैं तुझे उर से लगा लूँ।
विश्व की विश्वस्तता में
है बड़ा अभिशाप आली!
शक्ति के शंकित स्वरों से
गूँजता अपलाप आली।
क्षुब्ध उर के गीत रच-रच आ विजन में बैठ गा-लूँ।
आ, तुझे अपना बना लूँ।

एक सपना भावना का
कौन अपना है सहेली
विश्व व्यवहृत कामना में
और जीवन है पहेली
कौन फिर अपना नहीं है, मैं किसे दुश्मन बना लूँ।
आ, तुझे अपना बना लूँ।

विश्व की इन वीथियों में
भ्रांत मति, दुर्लभ अरी, गति
लोक का व्यवहार तो बस
हैं अपेक्षाएं अपरिमित
दूर तेरी वाटिका में एक लघु कुटिया बना लूँ।
आ, तुझे अपना बना लूँ।

बैठ कर उसमें अचिन्तित
नीति देखूँगा नियति की,
और देखूँगा जगत में
कौन-सी सीमा प्रगति की
इसलिए तो सोचता हूँ बन्धनों से मुक्ति पालूँ।
आ, तुझे अपना बना लूँ।

❖❖❖

पारस-परस लोकार्पण एवं काव्य सन्ध्या

स्वर्गीय पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून' तथा स्वर्गीय श्रीमती बेला देवी की स्मृति में पारस बेला न्यास द्वारा प्रकाशित त्रैमासिक काव्य-पत्रिका पारस-परस के अप्रैल-जून 2014 अंक का लोकार्पण समारोह 12 अप्रैल, 2014 को होटल राजपथ, रेजीडेन्सी कौशाम्बी, गाजियाबाद में कई गणमान्य व्यक्तियों की उपस्थिति में हुआ। इस कार्यक्रम की अध्यक्षता गौड़ संस के संपादक और प्रसिद्ध कवि और गीतकार श्री बी. एल. गौड़ ने की। कार्यक्रम के मुख्य अतिथि अंग्रेजी भाषा के सुप्रसिद्ध लेखक और लोकसभा में संयुक्त सचिव श्री देवेन्द्र सिंह ने की। हिन्दी अकादमी, दिल्ली के सचिव डॉ. हरिसुमन 'बिष्ट', उर्दू के जाने-माने शायर श्री पी. पी. श्रीवास्तव 'रिन्द' और श्री सर्वेश 'चन्दौसवी' इस कार्यक्रम के विशिष्ट अतिथि थे। इस कार्यक्रम का शुभारम्भ स्व॰ पं. पारसनाथ पाठक 'प्रसून' और स्व. माताजी बेला देवी के चित्र पर माल्यार्पण कर हुआ। इसके बाद, विशिष्ट अतिथि श्री देवेन्द्र सिंह तथा डॉ॰ हरिसुमन बिष्ट ने हिन्दी काव्य और हिन्दी काव्य का प्रचार-प्रसार करने वाली पत्रिका पारस-परस पर अपने उदगार व्यक्त किये।

डा. अनिल कुमार पाठक ने इस अवसर पर पं॰ पारसनाथ पाठक 'प्रसून' के व्यक्तित्त्व और कृतित्त्व पर प्रकाश डाला। उन्होंने बताया कि किस तरह 'बाबूजी' उच्च कोटि के रचनाकार होते हुए भी अपने जीवनकाल में हिन्दी के मुख्य कवियों की सूची में शामिल होने से वंचित रह गये।

इस अवसर पर, लोकार्पण के बाद एक काव्य सन्ध्या का भी आयोजन किया गया। काव्य सन्ध्या का संचालन जाने-माने कवि और लब्ध प्रतिष्ठ साहित्यकार **पंडित सुरेश नीरव** ने किया।

काव्य सन्ध्या का शुभारम्भ सरस्वती वंदना के साथ हुआ। सुश्री आख्या सिंह ने अपनी मधुर आवाज में-**माँ वीणा पाणि कहाँ हो, वाणी पर मेरी आओ / हम गायें गीत अनूठे, तुम वीणा खूब बजाओ**-के साथ किया। इसके बाद सुश्री ज्ञानेश्वरी 'सखी' सिंह और कमला सिंह 'जीनत' ने अपनी सुरीली आवाज में गीत-गज़ल गाकर श्रोताओं की खूब वाह-वाही लूटी। इस कार्यक्रम में विशेष आमंत्रित कवियित्री के रूप में डॉ॰ कीर्ति काले ने श्रोताओं को ऐसा मंत्र मुग्ध किया कि श्रोताओं ने उन्हें काफी देर तक सुना। देश के जाने माने गीतकार, ग़ज़लकार, अभिनेता और निर्देशक डॉ॰ अशोक 'मधुप' ने भी इस अवसर पर काव्य पाठ कर खूब वाह-वाही लूटी। जाने-माने शायर श्री अरूण सागर ने भी अपनी रचनाओं से श्रोताओं को सरोबार किया। हापुड़ से पधारे जाने माने कवि और दोहाकार डॉ॰ अशोक मैत्रेय ने आधुनिक संदर्भों से जुड़े दोहा सुनाकर लोगों की दोहा छन्द में और अधिक रूचि पैदा की। पारस-परस के संपादक श्री शिवकुमार बिलग्रामी ने भी अपनी अनूठी ग़ज़लों से खूब समा बांधा। उनका यह शेर लोगों ने खूब सराहा-

न्यूज़ क्या थी और क्या छापी गई अख़बार मे
आज फिर से बिक गया मालिक मेरे अख़बार का

पारस-बेला न्यास के संस्थापक सदस्य और अपर निदेशक, सूचना एवं प्रसारण निदेशालय, लखनऊ डॉ॰ अनिल कुमार पाठक ने 'बाबू जी' पर अपनी सुप्रसिद्ध कविता **'बाबू जी को याद करें / क्या भूल गये जो याद करें'**, इतनी भाव प्रबलता के साथ प्रस्तुत की कि श्रोताओं की आँखें नम हो गयीं।

उस्ताद शायर जनाब सर्वेश चन्दौसवीं ने इस शेर से अपने काव्य पाठ की शुरूआत की-

हो सके तो तुम कभी ऐसा करो
खुद से भागो और खुद पीछा करो ।

इसके अतिरिक्त उन्होंने ज्ञेय शैली में अपना एक गीत भी प्रस्तुत किया जिसे श्रोताओं ने खूब सराहा। काव्य सन्ध्या का संचालन कर रहे पं॰ सुरेश नीरव ने जब अपनी कालजयी रचना-

आग से तो मैं घिरा हूँ जल रहा कोई और है
मंजिलें मुझको मिलीं पर चल रहा कोई और है

सुनाई, तो श्रोतागण झूम उठे। इसके बाद 'रिन्द' साहेब ने भी अपना एक चालीस वर्ष पुराना गीत सुनाकर श्रोताओं को खूब रिझाया। कार्यक्रम के अंत में श्री बी. एल. गौड़ साहेब ने अपना अध्यक्षीय काव्य पाठ किया। उनकी ये पक्तियाँ सभी ने खूब सराहीं -

ऐ हिमखंड गलो मत ऐसे जैसे मेरी उमर गली
मैं रोया तो व्यर्थ गया सब तुझको फिर भी नदी मिली।

इस कार्यक्रम में श्रोता और दर्शक के रूप में कई अति विशिष्ट व्यक्ति भी उपस्थित थे। इनमें प्रमुख थे- वरिष्ठ लेखक और उपन्यासकार श्री राजेन्द्र त्यागी, राष्ट्रीय राजमार्ग प्राधिकरण के महाप्रबंधक (प्रशासन) श्री आर. सी. तिवारी एवं उनकी धर्मपत्नी, मिरिक हेल्थ प्रोडक्ट्स कंपनी के प्रबंध निदेशक श्री रंजीत तिवारी एवं उनकी धर्मपत्नी, अपर निदेशक प्रशासन, लोकसभा श्री विपिन कुमार एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती सीमा सिंह, उत्पाद एवं सेवा कर विभाग में वरिष्ठ अधिकारी श्री आर. के. सिंह, वरिष्ठ अधिकारी प्रशासन श्रम मंत्रालय श्री राजेश पाण्डेय, जाने-माने समाज सेवी पत्रकार और टी वी पैनलिस्ट श्री जय कान्त मिश्रा, वरिष्ठ अधिवक्ता श्री रजनीकांत शर्मा, दिल्ली स्थित एम्स में कार्यरत डॉ॰ दीपक बमोला एवं उनकी धर्मपत्नी, लोकसभा में अधिकारी श्री आर. के. त्रिवेदी, एन. आई. सी. में निदेशक श्री अनवर अंसारी एवं उनकी धर्मपत्नी श्रीमती निशा अंसारी, जानी-मानी कवियित्री एवं लोकसभा में अधिकारी डॉ. वन्दना डाबर 'ग्रोवर', प्रख्यात पेंटर श्री वी. के. 'अभी' एवं उनकी धर्मपत्नी, जानी-मानी कवियित्री एवं पेंटर श्रीमती विजयलक्ष्मी, ग्रेटर नोएडा प्राधिकरण में अधिकारी श्री मनोज कुमार सिंह, दिल्ली पुलिस में अधिकारी श्री राजेन्द्र कलकल, जानी मानी नृत्यांगना और ज्ञानेश्वरी इंस्टिट्यूट आफ पर्फार्मिंग आर्ट्स की सहनिदेशिका सुश्री महुआ महक उर्फ दानेश्वरी सिंह, पेंटर एवं कामर्शियल आर्टिस्ट बिंदु बाला सिंह, लेखक और लोकसभा में अधिकारी श्री कमल चौरसिया, ट्रूमीडिया के संपादक श्री ओम प्रकाश प्रजापति एवं उनके मित्रगण और कवि एवं प्रकाशक श्री आशुतोष 'आजाद', हापुड़ के कवि श्री भीम भारत भूषण, नवोदित कवि और शायर श्री सौरभ मिश्रा 'सीतापुरी' उदय द्विवेदी इत्यादि। इसके अतिरिक्त कई अन्य साहित्यकार और कविता प्रेमी भी कार्यक्रम में उपस्थित थे। कार्यक्रम के अंत में डॉ॰ अनिल कुमार पाठक ने सभी आगन्तुकों का धन्यवाद किया।

प्रस्तुति : पारस-परस प्रतिनिधि

❖❖❖

द्वीप प्रज्ज्वलन करते हुए कार्यक्रम के अध्यक्ष श्री बी. एल. गौड़

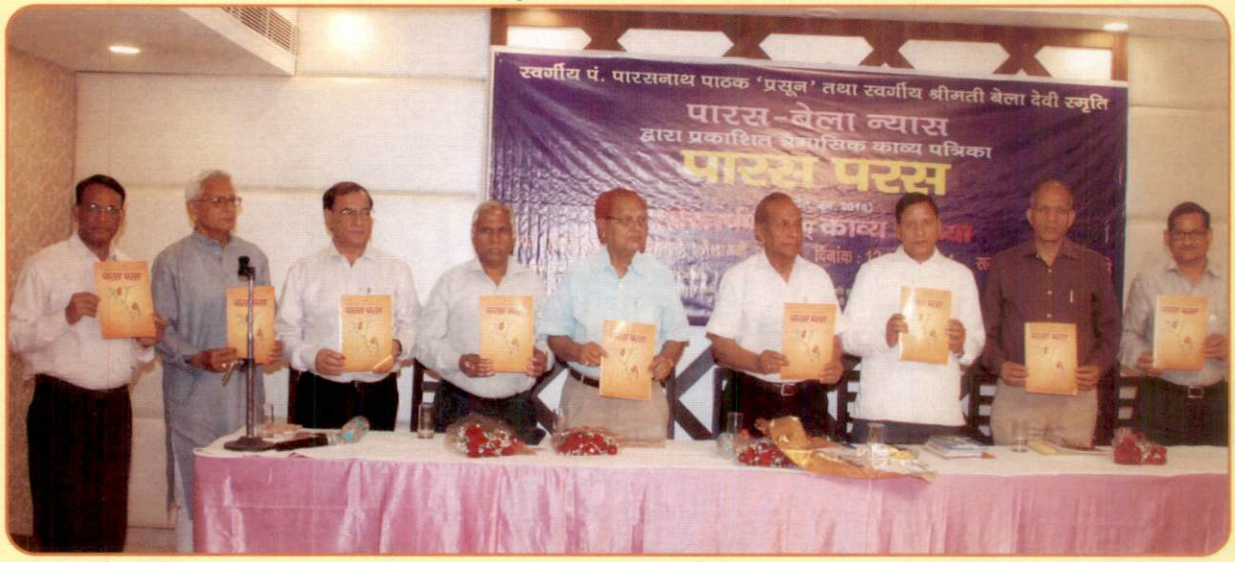

पारस-परस पत्रिका का विमोचन करते हुए बाएं से दाएं-सर्वश्री शिवकुमार बिलग्रामी, डॉ॰ अशोक मैत्रेय पं सुरेश नीरव, सर्वेश चन्दौसवी, पी. पी. श्रीवास्तव 'रिन्द', बी. एल. गौड़, देवेन्द्र सिंह, डॉ॰ हरिसुमन बिष्ट, डॉ॰ अनिल कुमार पाठक

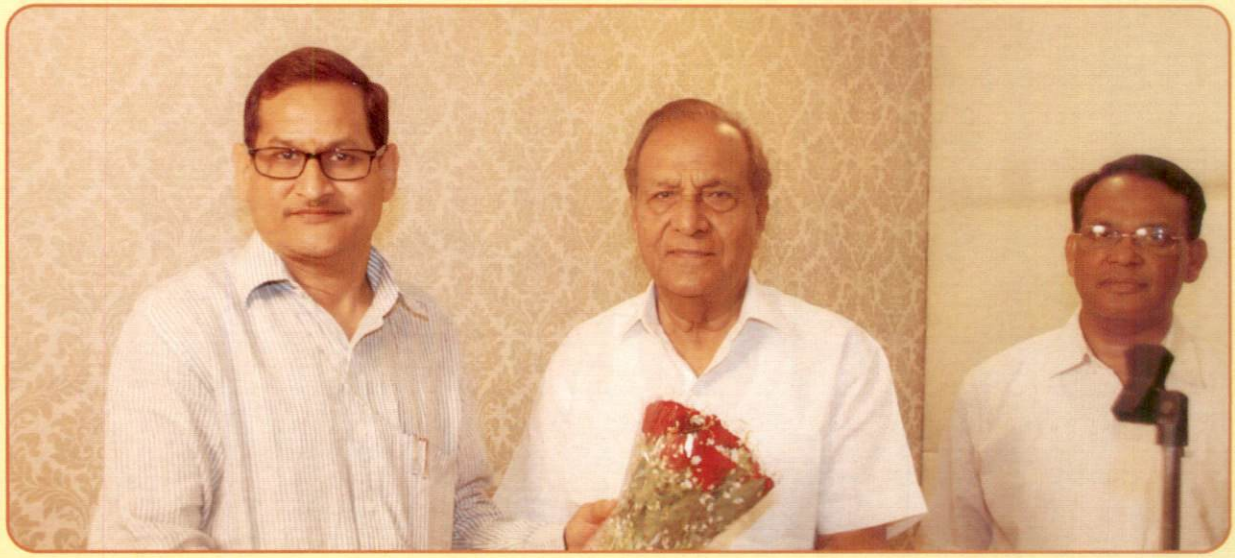

श्री बी. एल. गौड़ का स्वागत करते हुए पारस बेला न्यास के संस्थापक डॉ॰ अनिल कुमार पाठक एवं पारस परस पत्रिका के संपादक शिवकुमार बिलग्रामी

विशिष्ट अतिथि श्री देवेन्द्र सिंह, संयुक्त सचिव लोकसभा का स्वागत करते हुए डॉ॰ अनिल कुमार पाठक एवं शिवकुमार बिलग्रामी

सुप्रसिद्ध कवियित्री डॉ॰ कीर्ति काले का स्वागत करते हुए डॉ॰ अनिल कुमार पाठक

सरस्वती वंदना पाठ करते हुए सुश्री आख्या सिंह। साथ में बैठे हुए पं॰ सुरेश नीरव तथा श्री सर्वेश चन्दौसवी

कार्यक्रम में पधारे विशिष्ट अतिथिगण

कार्यक्रम में पधारे विशिष्ट अतिथिगण

कार्यक्रम में पधारे विशिष्ट अतिथिगण

कार्यक्रम में पधारे विशिष्ट अतिथिगण

कार्यक्रम में पधारे विशिष्ट अतिथिगण

कायाकल्प के अध्यक्ष डॉ॰ अशोक 'मधुप' और संरक्षक श्री एस. पी. गौड़, डॉ॰ अनिल कुमार पाठक का सम्मान करते हुए

कटा ज़िन्दगी का सफ़र धीरे-धीरे

- रामदरश मिश्र

बनाया है मैंने ये घर धीरे-धीरे
खुले मेरे ख़्वाबों के पर धीरे-धीरे

किसी को गिराया न खुद को उछाला
कटा ज़िन्दगी का सफ़र धीरे-धीरे

जहाँ आप पहुँचे छलाँगें लगा कर
वहाँ मैं भी पहुँचा मगर धीरे-धीरे

पहाड़ों की कोई चुनौती नहीं थी
उठाता गया यों ही सर धीरे-धीरे

ज़मीं खेत की साथ लेकर चला था
उगा उसमें कोई शहर धीरे-धीरे

न रो कर, न हँस कर किसी में उड़ेला
पिया खुद ही अपना ज़हर धीरे-धीरे

मिला क्या न मुझको ऐ दुनिया, तुम्हारी
मुहब्बत मिली है अगर धीरे-धीरे

थक गये हैं महफ़िलों के जाम, आओ घर चलें
सो गयी है रात बनकर शाम, आओ घर चलें

इश्तहारों को रहें पढ़ते भला कब तक यहाँ
चिट्ठियाँ होंगी हमारे नाम, आओ घर चलें

बिजलियों की रात में खोते गये अपनी शकल
याद आया है सुबह का घाम, आओ घर चलें

कोई आँसू, हँसी कोई, कुछ तो अपने नाम हो
जी लिये अब तक बहुत गुमनाम, आओ घर चलें

दूसरों के ख़्वाब को अपना समझ सोते रहे
पड़ा होगा ढेर सारा काम, आओ घर चलें

ढूँढ़ता ही रह गया मन आशियाँ बाज़ार में
थक गया अब चाहिए आराम, आओ घर चलें

राजधानी में अमन का राग देखो उठ रहा
क्या हुआ होगा वहाँ हे राम, आओ घर चलें

संपर्क : 011-28563587

ऐसा नहीं होता

-'अम्बर' खरबन्दा

जहाँ में हर बशर मजबूर हो ऐसा नहीं होता
हर इक राही से मंज़िल दूर हो ऐसा नहीं होता

तअ्ल्लुक़ टूटने का ग़म कभी हम से भी पूछो तुम
तुम्हारा ज़ख़्म ही नासूर हो ऐसा नहीं होता

गवाहों को तो बिक जाने की मजबूरी रही होगी
हमें भी फ़ैसला मंज़ूर हो ऐसा नहीं होता

मुहब्बत जुर्म है तो फिर सज़ा भी एक जैसी हो
कोई रूस्वा कोई मशहूर हो ऐसा नहीं होता

संपर्क : 09411512333

...तब हमने दो चार कहे

- बालस्वरूप राही

हम पर दुख का परबत टूटा तब हमने दो-चार कहे
उस पे भला क्या बीती होगी, जिसने शे'र हज़ार कहे

हमें ज़रा वनवास काटना पड़ा अगर कुछ दिन तो क्या
उसकी सोचो जो जंगल को ही अपना घर-बार कहे

सीधे-सच्चे लोगों के दम पर ही दुनिया चलती है
हम कैसे इस बात को मानें कहने को संसार कहे

अपना-अपना माल सजाए, सब बाज़ार में आ बैठे
कोई इसे कहे मजबूरी कोई कारोबार कहे

लूटमार में सबका यारो एक बराबर हिस्सा है
कोई किसको चोर कहे तो किसको चौकीदार कहे

अब किसके आगे हम अपना दुखड़ा रोएँ छोड़ो यार
एक बात को आख़िर कोई बोलो कितनी बार कहे

(2)

इतना बुरा तो तेरा भी अंजाम नहीं है
सूरज जो सवेरे था वही शाम नहीं है

पहचान अगर बन न सकी तेरी तो क्या ग़म
कितने ही सितारों का कोई नाम नहीं है

आकाश भी धरती की तरह घूम रहा है
दुनिया में किसी चीज़ को आराम नहीं है

पीने को मिले मय तो तकल्लुफ है कहाँ का
पी ओक से क़िस्मत में अगर जाम नहीं है

मत सोच कि क्या तूने दिया तुझको मिला क्या
शायर है जमा-खर्च तेरा काम नहीं है

ये शुक्र मना इतना तो इंसाफ़ हुआ है
तुझ पर ही तेरे क़त्ल का इलज़ाम नहीं है

संपर्क : 011-27213716

कमरों के जो सवाल थे...

- चन्द्रसेन विराट

(1)

क़ानून अदालत में कभी जब विफल हुए
कमरों के जो सवाल थे सड़कों पे हल हुए

पासों का कपट शकुनि ने हर बार ही किया
हर बार धर्मराज युधिष्ठिर से छल हुए

कैसा अजीब मौसम विपरीत मूल्य का
जो थे कभी कनेर वही अब कमल हुए

मालिक! उठो मुनीम से पूरा हिसाब लो
पूछो कि उसके झोंपड़े कैसे महल हुए

आदर्श तो बघारे, की घोषणा बहुत
व्यवहार में उन्हीं पे कहो क्या अमल हुए

बगिया के देवता को चढ़ाने के बाद भी
कलियाँ बची रही थीं तभी फूल फल हुए

वैसे ही चुप है पंछी, गुमसुम है फूल भी
कहता है कौन बाग़ में रद्दोबदल हुए

लोगों की भीड़ है 'विराट' पर मनुष्य के
सच्चे उदाहरण तो बिल्कुल विरल हुए

(2)

ये घटा है या प्रलय-अभियान का संकेत है
इन हवाओं में किसी तूफ़ान का संकेत है

हार थककर सो न जाना ओ सृजन के देवता
नाश अपने आप में निर्माण का संकेत है

होड़ में भौतिक सुखों के दब रही है आत्मा
ध्यान दो अध्यात्म! क्या विज्ञान का संकेत है

अनसुनी कर दी गई है चीख़ फिर से सत्य की
यह किसी सुक़रात के विषमान का संकेत है

घोर तम को चीरकर आ ही गई पहली किरण
यह उदय होते हुए दिनमान का संकेत है

क्षुब्ध है आकाश गंगा, ज्योतिपिंडों का स्खलन
क्या किस नक्षत्र के अवसान का संकेत है

घर न ख़ाला का समझ लेना कहीं कविकर्म को
द्वार पर ही हृदय के बलिदान का संकेत है

दर्द के परिपाक से ही गीत होता है तरल
यह किसी के अश्रु के अवदान का संकेत है

सपंर्क : 0731-2562586

मैं रहूँ या ना रहूँ, मेरा पता रह जाएगा
शाख़ पर यदि एक भी पत्ता हरा रह जाएगा

मैं भी दरिया हूँ मगर सागर मेरी मंज़िल नहीं
मैं भी सागर हो गया तो मेरा क्या रह जाएगा

-राजगोपाल सिंह

परिंदे को क्या पता

- लक्ष्मीशंकर वाजपेयी

बदनीयतों की चाल, परिंदे को क्या पता
फैला कहाँ है जाल, परिंदे को क्या पता

लोगों के कुछ लज़ीज़ निवालों के वास्ते,
उसकी खिंचेगी खाल, परिंदे को क्या पता

पिंजरा तो तोड़ डाला था, पर था नसीब में
उससे भी बुरा हाल, परिंदे को क्या पता

उड़ कर हज़ारों मील, इसी झील किनारे
क्यूँ आता है हर साल, परिंदे को क्या पता

देखा है जब से एक कटा पेड़ कहीं पर
क्यूँ है उसे मलाल, परिंदे को क्या पता

इक कार्ड अपनी चोंच से उसने उठा दिया
ज्योतिष का मायाजाल, परिंदे को क्या पता

एक-एक करके सूखते ही जा रहे हैं क्यों
सब झील, नदी, ताल, परिंदे को क्या पता

(2)

जब भी वीरान सा, ख़्वाबों का नगर लगता है
कितना दुश्वार, ये जीवन का सफ़र लगता है

भोलापन तुझमें, वही ढूँढ रही हैं नजरें
अब मगर तुझपे ज़माने का असर लगता है

कैसा चेह्रा ये दिया, आदमी को शहरों ने
कोई हमदर्दी भी जतलाए तो डर लगता है

इक ज़माने में बुरा होगा फ़रेबी होना
आज के दौर में ये एक हुनर लगता है

जिसकी हर ईंट, जुटायी थी लहू से अपने
कितना बेगाना उसे अपना वो घर लगता है

हम तो हर आँसू को शब्दों में बदल देते हैं
बस यही लोगों को, ग़ज़लों का हुनर लगता है

यूँ कड़ी धूप में लिपटाया छाँव से मुझको
माँ के आँचल सा, ये अनजान शजर लगता है

संपर्क : 09899844933

जो भी होना है, उसे इस बार हो जाने तो दो

- हरेराम 'समीप'

वेदना को शब्द के परिधान पहनाने तो दो
ज़िन्दगी के भाव को तुम शेर में गाने तो दो

वक़्त की ठंडक से शायद जम गई है ये नदी
देखना बदलेंगे मंज़र, धूप गर्माने तो दो

देख लेंगे हम अँधेरों की भी ताक़त कल सुबह
हौसले के सूर्य को सागर से आ जाने तो दो

खोज ही लेंगे नया आकाश ये नन्हे परिंदे
इन परिंदों को ज़रा तुम पंख फैलाने तो दो

मुद्दतों से सोच अपनी बंद कमरों में है क़ैद
खिड़कियाँ खोजो, ज़रा ताज़ा हवा आने तो दो

नासमझ है वक़्त, लेकिन ये बुरा बिल्कुल नहीं
मान जाएगा, उसे इस बार समझाने तो दो

कब तलक डरते रहोगे, ये न हो, फिर वो न हो
जो भी होना है, उसे इस बार हो जाने तो दो

(2)

रख दिए हैं ताक़ पर सबने ही अब जलते सवाल
आज के फ़नकार को बस वाहवाही चाहिए

ख़ून से लथपथ पड़ा है हर क़दम पर आदमी
क्रूरता की और क्या तुझको गवाही चाहिए

खौफ़ बेचा जा रहा, बाज़ार में कम दाम पर
क्योंकि ज़ालिम को, मुनाफ़े में तबाही चाहिए

सिर्फ़ कहने के लिए, जम्हूरियत है देश में
आज भी आवाम को, ज़िल्ले-इलाही चाहिए

संपर्क : 09871691313

तेरे चेहरे के अंदर दूसरा चेहरा नहीं निकला

- ओमप्रकाश 'यती'

(1)

नज़र में आज तक मेरी कोई तुझसा नहीं निकला
तेरे चेहरे के अन्दर दूसरा चेहरा नहीं निकला

कहीं मैं डूबने से बच न जाऊँ, सोचकर ऐसा
मेरे नज़दीक से होकर कोई तिनका नहीं निकला

ज़रा सी बात थी और कशमकश ऐसी कि मत पूछो
भिखारी मुड़ गया और जेब से सिक्का नहीं निकला

सड़क पर चोट खाकर आदमी ही था गिरा लेकिन
गुज़रती भीड़ का उससे कोई रिश्ता नहीं निकला

जहाँ पर ज़िन्दगी की, यूँ कहें ख़ैरात बँटती थी
उसी मंदिर से कल देखा कोई ज़िन्दा नहीं निकला

(2)

पर्वत, जंगल पार करेगी बंजर में आ जाएगी
बहते-बहते नदिया इक दिन सागर में आ जाएगी

कोयला का उत्साह देखकर शायद मोम हुआ होगा
वर्ना इतनी गरमी कैसे पत्थर में आ जाएगी

बहनों की शादी का कितना बोझ उठाना है मुझको
ये बतलाने वाली लड़की कल घर में आ जाएगी

भाभी जब भाभी-माँ बनकर अपना प्यार लुटाएगी
लछिमन वाली मर्यादा भी देवर में आ जाएगी

शाम हुई तो कुछ रंगीनी बढ़ जाएगी शहरों की
और गाँव की बस्ती काली चादर में आ जाएगी

संपर्क : 09999075942

अब सर उठाना चाहिए

- नरेश शांडिल्य

सह चुके अब तो बहुत अब सर उठाना चाहिए
आदमी को आदमी होकर दिखाना चाहिए

कब तलक क़िस्मत की हाँ में हाँ मिलाते जाएँगे
अपने पैबन्दों को अब परचम बनाना चाहिए

आँधियों में खुद को दीये-सा जलाएँ तो सही
हाँ कभी ऐसे भी खुद को आज़माना चाहिए

तू मेरे आँसू को समझे, मैं तेरी मुस्कान को
आपसी रिश्तों में ऐसा ताना-बाना चाहिए

हममें से ही कुछ को मेहतर होना होगा सोच लो
साफ़-सूथरा-सा अगर बेहतर ज़माना चाहिए

(2)

उसी ने चैन छीना है, वही बस चैन देता है
मेरी रातों का दुश्मन जो, वही दिन का चहेता है

वही तूफ़ान है मेरा, वही पतवार भी मेरी
वही कश्ती डुबोता है, वही कश्ती को खेता है

कभी कहता मुझे ऊला, बताता है कभी सानी
वो शायर है यूँ बातों से, मेरा दिल जीत लेता है

मेरे ख़्वाबों के भी आख़िर, किसी दिन पर निकल आएँ
मेरी पलकों पे आ-आकर, वो यूँ ख़्वाबों को सेता है

नहीं आसान उसको जानना, ये सोच लो जी में
वो कण भर जान पाता है, जो मनभर जान देता है

संपर्क : 09868303565

ग़ज़ब के दोहे

- डॉ॰ दिनेश चन्द्र अवस्थी

बिना बड़प्पन के बड़े, बन जाते हैं भार
बड़े वही जो प्रेम दें, और करें उपकार

विश्व-सुंदरी है वही, जो बने गले का हार
तन सुंदर बेकार वह, जिससे मिले न प्यार

जिनको पति कर्कश मिले, पत्नी मैके जाय
जिनकी पत्नी कर्कशा, उनका कौन उपाय?

छोटे बच्चों को कभी, मत करना इग्नोर
दिशा दिखाओं उन्हें फिर, देखो उनका ज़ोर

थोड़ा दबने से सदा, झगड़ा होता पस्त
थोड़ा दबकर बैठिये, रेल सफर हो मस्त

दूजे के कर्तव्य ही, हैं मेरे अधिकार
हम भी निज कर्तव्य कर, सुखी करें संसार

पैसे की ताक़त बढ़ी, काफी बढ़े दलाल
बहुत-बहुत हैं बिक चुके, कुछ अनबिके मिसाल

अगर अकेले खाओगे, होगा भ्रष्टाचार
जब शामिल होते सभी, बनता शिष्टाचार

नापसन्द करते सभी, सीधे जन को, मित्र!
ऋजु रेखाओं से नहीं, बनता मोहक चित्र

दोनो एक समान हैं, मक्खन बाज, दलाल
मीठा मीठा बोलकर, सबको करें हलाल

पक्के बिजनेसमैन हैं, छंटे हुए बदमाश
हाथ वहीं पर डालते, जहाँ लाभ की आस

संपर्क : 09919281002

बदलेगा यह निज़ाम ज़रा आँख तो उठा

-डॉ. मधु चतुर्वेदी

नीची नजर अवाम जरा आंख तो उठा,
बदलेगा यह निजाम जरा आंख तो उठा

कीमत तेरी निगाह खुद की आंक ले अगर,
पूरा लगेगा दाम, ज़रा आंख तो उठा ।

काली थी रात, दिन भी जो धुंधला गया तो क्या,
होगी सुहानी शाम, ज़रा आंख तो उठा ।

जो तू बुलन्द हौंसले के साथ हो खड़ा,
हों साथ तेरे राम, ज़रा आंख तो उठा ।

उनका जो तेरे हक़ पे खेमे गाड़ रहे हैं,
बिखरेगा ताम झाम, ज़रा आंख तो उठा ।

तेरी यही है ख़ासियत तू जान ले 'मधु'
तू आदमी है आम, ज़रा आंख तो उठा ।

(2)

मत पूछिये, हम किस-किस अंजाम से गुज़रे हैं ।
है शौक बड़ा ज़ालिम, हम जान से गुज़रे हैं ।।

इस रुह की नर्मी के, कुछ सख्त तकाज़ों से,
ईमान बचाने को, ईमान से गुज़रे हैं ।

तब इश्क की दुश्वारी आसान हुई, हमको,
बेख़ौफो-ख़तर जब हर इमकान से गुज़रे हैं ।।

यह कैसी खुमारी है, जो रूह पे तारी है,
कब जाने सुबह से हम, कब शाम से गुजरे हैं ।।

फूलों पर चलने का, हमको न सलीक़ा था,
लेकिन हम कांटों पर, आराम से गुज़रे हैं ।।

अब जो भी कह देंगे वह सच हो जाएगा,
हम आज 'मधु' ऐसे इलहाम से गुज़रे हैं ।।

संपर्क : भजन रेस्टोरेंट, गजरौला, उ० प्र०

अपने हिस्से के दु:ख-सुख

-रमा वर्मा

अपने हिस्से के सुख-दु:ख सब, हमने तन्हा-तन्हा काटे
फिर भी इन दोनों हाथों से, प्यार-सने उपहार ही बाँटे।
अब तुम अपनी-अपनी जानो....

जिस आँचल ने छाया दी थी, उस आँचल में घाव हजारों
जिस गोदी में ममता के नभ, उनमें छिद्र बनाये लाखों
दर्द तुम्हारे पीकर सारे, ममता भरे रिसाले बाँटे
अब तुम अपनी-अपनी जानो....

जितना था जैसा था हम पर, दोनों हाथ उलीचा भर-भर
लिखा नहीं न सोचा ही था, कितना खर्च हुआ था तुम पर
तुम तो ठग थे, व्यापारी थे, किये हृदय-चाक पर दाँते
अब तुम अपनी-अपनी जानो....

हम पत्थर के काल खण्ड पर, अश्कों की भाषायें गढ़ते
और उदासी के माथे पर चंदन तिलक लगाये फिरते
अपनी कोशिश रही सदा से, दिल पर पड़ी दरारें पाटें
अब तुम अपनी-अपनी जानो....

कभी-कभी यह सोच-सोच कर, मन भारी-भारी हो जाता
स्वयं ही स्वयं को हिम्मत देता, मन ही मन खुद को समझाता
व्यर्थ न रुकना, चलते रहना, लाख बिछे हों मग में काँटे
अब तुम अपनी-अपनी जानो....

अगर फिसलते अनजानें में, मन को इतना दु:ख न होता
धक्का देकर डुबा न पाते, सावधान पहले हो जाते
मनमोहन का हाथ न होता, तीर शिखण्डी क्या चल पाते
अब तुम अपनी-अपनी जानो....

सुख दु:ख आते और जाते है, क्रम है ये चलता ही रहता
पर अपनों का भितरघात ही, अन्दर तक छलनी कर जाता
इंगित करते नहीं विभीषण, तो लंकेश क्या मारे जाते
अब तुम अपनी-अपनी जानो....।

संपर्क : आगरा, उत्तर प्रदेश

स्त्री और नदी

- ममता किरण

स्त्री झांकती है नदी में
निहारती है अपना चेहरा
संवारती है माथे की टिकुली, मांग का सिन्दूर
होठों की लाली, हाथों की चूड़ियां
भर जाती है रौब से
मांगती है आशीष नदी से
सदा बनी रहे सुहागिन
अपने अन्तिम समय
अपने सागर के हाथों ही
विलीन हो
उसका समूचा अस्तित्व
इस नदी में
स्त्री मांगती है नदी से
अनवरत चलने का गुण
पार करना चाहती है
तमाम बाधाओं को
पहुंचना चाहती है
अपने गन्तव्य तक
स्त्री मांगती है नदी से
सभ्यता के गुण
वो सभ्यता
जो उसके किनारे
जन्मी, पली, बढ़ी और जीवित रही
स्त्री बसा लेना चाहती है
समूचा का समूचा संसार नदी का
अपने गहरे भीतर
जलाती है दीप आस्था के
नदी में प्रवाहित कर
करती है मंगल कामना सब के लिए
और....
अपने लिए मांगती है
सिर्फ़ नदी होना
सिर्फ़ नदी होना।

(2)

स्मृतियां

मेरी मां की स्मृतियों में कैद है
आँगन और छत वाला घर
आँगन में पली गाय
गाय का चारा-सानी करती दादी
पूरे आसमान तले छत पर
साथ सोता पूरा परिवार
चांद-तारों की बातें
पड़ोस का मोहक
बादलों का उमड़ना-घुमड़ना
दरवाजे पर बाबा का बैठना

जबकि मेरी स्मृतियों में
दो कमरों का सींखचों वाला घर
न आंगन न छत
न चांद न तारे
न दादी न बाबा
न अड़ोस न पड़ोस
हर समय कैद
और हां....
वो क्रच वाली आंटी
जो हम बच्चों को
अकसर डपटती रहती थी।

संपर्क : 304, टाइप-4, क्वार्टर्स
लक्ष्मीबाई नगर, नई दिल्ली

जय-जयकार नहीं होती

- डॉ॰ तारा गुप्ता

ऊँची लहरों से घबराकर
नैया पार नहीं होती
कर्मनिष्ठ लोगों की कोशिश
हाँ, बेकार नहीं होती

नन्ही चींटी अंडे बच्चों के
संग घर से चलती है
धीरे से चढ़ती खिड़की पर
सौ-सौ बार फिसलती है

निज विश्वास, रगों में उसकी
हर पल हिम्मत भरता है
चढ़कर गिरना, गिरकर उठना
सफ़र नहीं यह थमता है

कोई भी तो फिसलन उसकी
अंतिम हार नहीं होती
गोताखोर कूद सागर में
गहराता, उतराता है

गहरे तल में जा-जाकर वह
खाली हाथ हिलाता है

मिल पाती जब नहीं सीपियाँ
तो न बैठ नादानी में
मन में दूनी हिम्मत लेकर
पुनः कूद तू पानी में

लेकिन उसकी मुट्ठी खाली
अब की बार नहीं होती

हार-प्रहारों की चोटों को
पांडव बन स्वीकार करो
मंजिल अगर दूर रह जाए
मंथन बारम्बार करो

संघर्षों को गले लगाकर
धीरे-धीरे भागें हम
बस हारे हरि नाम जपें यह
आदत अपनी त्यागें हम

बिना किए कुछ काम, जगत में
जय-जयकार नहीं होती

संपर्क : 0120-2796089

कुआँ

- सुलोचना वर्मा

मुझे परेशान करते हैं रंग
जब वे करते हैं भेदभाव जीवन में
जैसे कि मेरी नानी की सफेद साड़ी
और उनके घर का लाल कुआँ
जबकि नहीं फर्क पड़ना था
कुएं के बाहरी रंग का पानी पर
और तनिक संवर सकती थी
मेरी नानी की जिंदगी साड़ी के लाल होने से

मैं अक्सर झाँक आती थी कुएं में
जिसमे उग आये थे घने शैवाल
भीतर की दीवार पर
और ढूँढने लगती थी थोड़ा सा हरापन
नानी के जीवन में
जिसे रंग दिया गया था काला अच्छी तरह से

पत्थर के थाली-कटोरे से लेकर,
पानी के गिलास तक में
नाम की ही तरह जो देह था कनक सा
दमक उठता था सूरज की रौशनी में
ज्यूँ चमक जाता था पानी कुएं का
धूप की सुनहरी किरणों में नहाकर

रस्सी से लटका रखा है एक हुक आज भी मैंने
जिन्हें उठाना है मेरी बाल्टी भर सवालों के जवाब
अतीत के कुएं से
कि नहीं बुझी है नानी के स्नेह की
मेरी प्यास अब तक
उधर ढूँढ लिया गया है कुएं का विकल्प नल में
कि पानी का कोई विकल्प नहीं होता
और नानी अब रहती है यादों के अंधकूप में !

दीवाली

-डॉ. मंजु शर्मा महापात्र

बाहर से सब भरे हुये हैं, भीतर से सब खाली हैं,
जले भीतर अरमानों की होली, बाहर तो दीवाली है।
अंदर तो घर सुलग रहे, पर बाहर दीपक जलते हैं,
झूठी मुस्कान ओढ़ आज , हम सब बाहर निकलते हैं।
सद्भाव रहे यदि मन में तो, टिके वहाँ खुशहाली है,
जले भीतर अरमानों की होली, बाहर तो दीवाली है।
...स्नेह का, स्नेह भरे यदि, हर दीपक की बाती में,
फिर से स्वर्ग उतर आएगा, इस ऋषियों की थाती में।
बिखर पड़े यदि प्रेम धरा पर, तभी लगे उजियाली है,
जले भीतर अरमानों की होली, बाहर तो दीवाली है।
अपने गमों को भूल आओ, औरों के दुख बंटाएँ,
उनके तिमिराछन्न मनों में, स्नेह के दीप जलाएँ।
बांटें हम खुशियाँ वहाँ, जहां आज बदहाली है,
जले भीतर अरमानों की होली, बाहर तो दीवाली है।

(2)

पुरानी ईंटें

आज घर बनवाते समय
कुछ ईंटें, अपने पुराने टूटे कमरे की
लगवा दीं थीं मैंने
इस नए बनते हुये घर में।
तभी अचानक बोला था कोई
''नहीं लगवाई जातीं कभी,
पुरानी ईंटें
नए बनते हुये घर में।
इससे रहती है संभावना
कुछ पुरानी, अप्रिय घटनाओं
की पुनरावृति की''
सोचा था मैंने मन में
बिना टूटे-जुड़े भी
क्या, कभी, कोई घर बना है ?
बिना जुड़े पुराना
क्या कभी कुछ, नया बना है ?
और फिर जो घटना होता है,
उसे कोई रोक नहीं सकता,
और जो घटना नहीं होता,
उसे कोई घटा नहीं सकता।
तो फिर डरना क्या।
अत: निश्चिंत हो
लगाने दीं मैंने, ईंटें,
अपने पुराने टूटे कमरे की,
अपने नए बनते हुये घर में।

संपर्क : 09040781783

मैं और मेरी चिड़िया

-ऋतु गोयल

(2)

एक थी चिड़िया
एक थी मैं
मैं थी चिड़िया
या चिड़िया थी मैं
यह समझना मुश्किल था
क्योंकि इतनी समानताएं थी हम दोनों में
कि लोग अक्सर मुझे चिड़िया कहते थे
और चिड़िया को मुझ जैसा
हमने कितनी ही शाखों पर झूले डाले थे
झूलों पर सजाये थे सपने
सपनों में छोटी छोटी चाहत
और चाहत में क्या
बस गलियां, सखियां और अपने
पर जैसे जैसे हमारे क़द
हमारे झोटों से ऊंचे होने लगे
न जाने किसकी नजर लगी
हमारे पंख हम से छीन लिये गये
और एक रस्म निभायी गई
जिसमें गलियां, सखियां, अपने
सब तो दूर हुए ही
मेरी चिड़िया भी मुझसे बिछुड़ गई
अब मुझे कोई चिड़िया नहीं कहता
शायद चिड़िया को भी मुझ जैसा
अब जब भी जाती हूं उन गलियों में
वो चिड़िया दिखायी नहीं देती
वह भी रुखसत हो गयी होगी कहीं
क्योंकि
मायके में बिन बिटिया के चिड़िया के क्या मायने
और ससुराल वाले क्या जाने
यह ससुरी चिड़िया
किस चिड़िया का नाम है

टीचर

अ से अनार
आ से आम
वर्णमाला के एक एक अक्षर
हमारी टीचर ने उसी तरह
हमारे मुंह में डाले
जिस तरह मां ने
टीचर दुनिया से मुकाबला करवाती थी
रोटी के निवाले
मां आंचल में छिपाये रखना चाहती थी
मां कभी परीक्षा नहीं लेती
ताकि हम हार न जाएं
टीचर बार बार परीक्षाएं लेती जिससे
हम जीत के काबिल बन पाएं
माँ अक्सर प्रेमवश हमारी गलतियां ढांपती रही
पर हम नेक बन सके
इसलिए टीचर हर गलती पर डांटती रही
मां कहती उधर न चढ़ना गिर जाओगे
टीचर कहती बेशक गिरो
पर बार बार चढ़ना
एक दिन संभल जाओगे
माँ हमारे भविष्य में अपना भविष्य संजोती रही
पर टीचर यह जानते हुए भी कि
हम एक दिन दूर चले जायेंगे
हमारा भविष्य संवारती रही
हमारा भविष्य संवारती रही

संपर्क : 09818163333

सुनो भेड़िये

-संगीता शर्मा ''अधिकारी''

सुनो भेड़िये
सब जानते है तुम्हारी प्रवृत्ति
अच्छा होता है समय रहते
सब जानना-समझना
व्यर्थ की खुशफ़हमियां
बरगलाती है एकांत में
और फिर ले जाकर पटक देती है सुदूर।

क्या समझते हो तुम
कि ये इलाका तुम्हारा है...
शक्तिशाली हो तुम
और हम अशक्त
तुम शेर!!!!!!!!
शेष सब मेमने
इतनी गलतफहमियां जायज़ नहीं ।

माना इलाका तुम्हारा है
पर अपनी गली में तो...
कभी बाहर मिलो तो जानोगे??????

खैर...
लगता है अब से पहले
किसी ने तुमसे, तुम्हारा परिचय नहीं कराया ।

सुनो भेडिये!!!!!!!!
माना चुप रहना आसान है
भागना और भी आसान
किन्तु विरोध.....दुष्कर ।

और मौन जब भी मुखर होता है
तो उसे रोकना भी
उतना ही दुष्कर होता है
बेहतर है.....तुम जितनी जल्दी समझो ।

(2)

पोषण

क्यों सोचते हो तुम
कि तुम्हारी पीठ पर
कोई हो????????

क्या फर्क पड़ता है
इस बात से
कि कोई पोषित करे
तुम्हारी पीठ ।

क्या सिर्फ इसलिए
कि कोई न चढ़ बैठें
तुम्हारी छाती पर ?????

पर क्यों नहीं सोचते
तुम बित्ती भर भी
कि किसी की छाती पर चढ़ना
इतना आसान नहीं ।
गर होता!!!!!!!

तो

कर्म.....गौण
और
बल.....प्रधान
हो गये होते ।

संपर्क : 09810247752

मेरा भी है जन्म जरूरी...

-रमेश गौतम

माँ, मैं भी दुनियाँ देखूँगी
देना दो नयना
मेरा क्या है दोष
पक्ष माँ, मेरा सुन लेती
जीवन देने से पहले, क्यों
मृत्यु दण्ड देती
मेरा भी जन्म जरूरी
माँ, सबसे कहना
मेरी भी किलकारी से
गूँजे तेरा आँगना
मैं भी जानूँ होता है
माँ, कैसा यह बचपन
राखी का अधिकार मिले तो
कहलाँऊ बहना
सप्तपदी का मतलब माता,
क्या रह जाएगा
बिन गुड़िया के गुड्डा
कैसे ब्याह रचाएगा
कन्यादान करो तो पहनूँ
माँ बिछुए-गहना
आहत, हल्दी, बिँदिया, चूड़ी
दर्पण का विश्वास
धरती ही न रही
करेगा क्या केवल आकाश
मेरे बिना सफल क्या
कोई अनुष्ठान करना
मेरा ही प्रतिरूप सृष्टि
के तल में संचित है
जन्म हुआ यदि नहीं
प्रलय का आना निश्चित है
मिट जाएगी एक विरासत
रोएगी बिधना

(2)

माँ

माँ तू ने ही पँख दिए हैं।
तू ने ही आकाश दिया।।
माँ मेरी पहली उड़ान पर
तेरे जप-तप साथ उड़े।
मेरी मरुथल यात्राओं में
अधरों से फिर मेघ जुड़े।
तेरे ही आशीषों ने माँ
मेरा पथ निर्विघ्न किया।।
तेरी ही आधारशिला पर
माँ मेरा अस्तित्व खड़ा।
माँ तुझ से ही शक्ति मिली तो
मैंने अपना युद्ध लड़ा।
बूँद-बूँद तू रिक्त हुई माँ
मैंने सुख भरपूर जिया।।
तू घर के सतिया अंकन में
जीवन धरा-सी स्पन्दित।
माँ तू अभिनन्द पत्रों पर
मैं होता महिमामण्डित
छाँव बनी तपती दोपहरी
जब भी तेरा नाम लिया।।
आँगन के तुलसीदल में माँ
जल देती तेरी छवियाँ।
मानस की चौपाई जैसी
माँ तेरी ही सुस्मृतियाँ
मेरे हित पीयूष मथा माँ
पर तू ने विषपान किया।।
माँ तेरी रोटी की सुगन्ध
इस जिह्वा पर कालजयी।
अब राक चौके में महक रही
तेरी आहट स्नेहमयी।
हाथों की फटी लकीरों को
माँ तूने चुपचाप सिया।।

❖❖❖

संपर्क : 09411470604

...इक अर्ज़ हमारी भी

-उदय प्रताप सिंह

नेता जी
सुन लो इक अर्ज हमारी भी,
तुम लड़ो चुनाव हम देंगे वोट,
जीतो बनो मंत्री, प्रधान मंत्री,
जो चाहो नियम बनाओ पर
हैं कुछ शर्तें हमारी भी।

तुम बनाओ अट्टालिकाएँ, महले-दुमहले,
उधर नहीं देखेंगे हम, आँख उठाकर भी,
पर होनी चाहिए इक झोपड़ी हमारी भी।

तुम चलो काफिलों में
पचास गाड़ियों के,
पचास-पचास लाख की,
घण्टों सड़कें जाम रखो,
सायरन पर सायरन बजता रहे,
पर हो इक नई, नहीं तो पुरानी
साइकिल हमारी भी।

तुम शिक्षार्थ भेजो अपने बच्चों को,
दुनिया के उन्नत मुल्कों में,
पढ़-लिख कर वे विद्वान बनें,
पर हो गाँवों में भी,
शिक्षक सहित इक पाठशाला हमारी भी।

तुम करो रैलियाँ रोज दर्जनों,
भाषण दो घण्टों तान के सीना,
हम सुन लेंगे झुके-झुके,
झुक कर ही बोलेंगे, पर
कभी तो सुन लो, इक बात हमारी भी।

तुम इलाज कराने जाओ विदेश,
हो जाओ चंद दिनों में चंगे-मंगे,
हम महीनों रगड़े बिस्तर पर,
कोई तो हो हमारा उपचारी भी।

तुम उन्नत हो धनवान बनो पर,
मत स्विस बैंक में रखो ख़जाना,
कितना है वो ? मालूम नहीं,
गिनती तक तुम भूल गए,
ग्रामीण बैंक में हो इक खाता,
है ये चाह हमारी भी।

तुम फिल्टर-मिनरल वाटर पियो,
जो चाहो मौज उड़ाओ, पर
पानी लेने गाँवों में,
महिलाएँ जातीं कोसों दूर,
कुछ इनकी भी तो सुनो हुजूर,
बूँद-बूँद पानी को तरसें, औ' सोचें,
कि काश कहीं होता घर में इक नल,
बोलो है ऐसी क्या लाचारी भी!

तुम रहो एअर कंडीशन में,
तुम पर मौसम का कोई प्रभाव नहीं,
गुरेज नहीं हमको,
पर जब है सर्दी-गर्मी आती,
नींद उड़ाती - चैन चुराती,
सारी सारी रात जगाती,
हम सबको दिन-रात रुलाती,
चैन मिले हमको भी थोड़ा,
जो होती कहीं अटारी भी।
तुम दस-दस बॉडीगार्ड रखो,
रहो सुरक्षित चाह हमारी,
कुछ ऐसी भी तो करो व्यवस्था,
कि हों सुरक्षित देश के अन्य नर नारी भी।
तुम लम्बे-चौड़े भाषण दो
फर्क नहीं पड़ता अब कोई
क्या विश्वास जगा सकते हो
कि मिट सकती है जन-जन की लाचारी भी।
तुम बनाओ बिगाड़ो बदलो बिल-विधोयक
बने बनाए फाड़ो फेंको कूड़ेदान में
सब सहेंगे हम, सहकर भी
मूक रहेंगे हम,
पर कहीं तो हो सुनवाई हमारी भी।
लोकतंत्र का सच्चा मतलब
हो जन-जन की भागीदारी भी।

नेता जी सुन लो है इक अर्ज हमारी भी।

संपर्क : 08861257082

बेच दी क्यों ज़िन्दगी

-शिवकुमार बिलग्रामी

बेच दी क्यों ज़िन्दगी दो चार आने के लिए
एक दो लम्हा तो रखता मुस्कुराने के लिए

दौड़कर दफ्तर गये भागे वहाँ से घर गये
लंच में फुर्सत नहीं है लंच खाने के लिए

किसलिए किसके लिए टट्टू बने हो रात दिन
आज भी रोया है बच्चा गोद आने के लिए

गाँव में माँ-बाप तुमको याद करते हैं बहुत
वक़्त थोड़ा सा निकालो गाँव जाने के लिए

कुछ समय घर के लिए भी अब निकालो दोस्तो
दिन बहुत थोड़े बचे हैं घर बचाने के लिए

(2)

हमारे पाँव डरते हैं तुम्हारे साथ चलने में
ज़रा सा वक़्त लगता है, सही नीयत बदलने में

तुम्हें शायद पता हो या न हो शायद पता तुमको
कि सालों साल लगते हैं चुभा काँटा निकलने में

किसी पत्थर की मूरत से न करना प्यार तुम हरगिज़
हज़ारों साल लगते हैं बुतों का दिल पिघलने में

ज़रा सा वक़्त तो दे ज़िन्दगी मुझको सँभलने का
बुरा हो वक़्त तो कुछ वक़्त लगता है सँभलने में

❖❖❖

सृजन - स्मरण

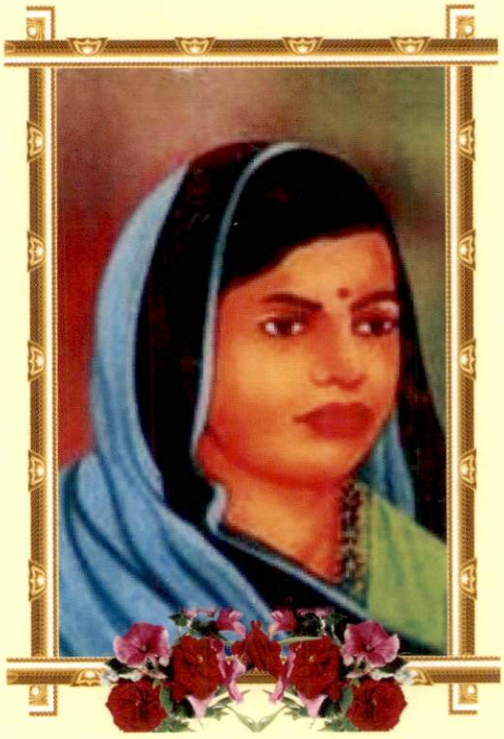

सुभद्रा कुमारी चौहान

(जन्म : 16 अगस्त, 1904 ; निधन : 15 फरवरी, 1948)

तुम मुझे पूछते हो 'जाऊँ ?
मैं क्या जवाब दूँ तुम्हीं कहो!
'जा....' कहते रुकती है जबान
किस मुँह से तुमसे कहूँ रहो!

सेवा करना था जहाँ मुझे
कुछ भक्ति–भाव दरसाना था।
उन कृपा–कटाक्षों का बदला
बलि होकर जहाँ चुकाना था।

मैं सदा रूठती ही आयी,
प्रिय! तुम्हें न मैंने पहचाना।
वह मान बाण–सा चुभता है,
अब देख तुम्हारा यह जाना है।।

– सुभद्रा कुमारी चौहान

सृजन-स्मरण

भारतेन्दु हरिश्चंद्र

(जन्म : 9 सितम्बर, 1850 ; निधन : 6 जनवरी, 1885)

निज भाषा उन्नति अहै सब उन्नति को मूल।
बिन निज भाषा ज्ञान के मिटत न हिय को सूल।

पढ़े संस्कृत जतन करि पंडित भे विख्यात।
पै निज भाषा ज्ञान बिन कहि न सकत एक बात

उन्नति पूरी है तबहि जब घर उन्नति होय।
निज शरीर उन्नति किए रहत मूढ़ सब लोय।

गुरू सिखवत बहु भाँति लौं जदपि बालकन ज्ञान।
पै माता–शिक्षा सरिस, होत तौन नहिं ज्ञान।

– भारतेन्दु हरिश्चंद्र